युग
स्पंदन

युग स्पंदन

संयुक्त अंक : जनवरी-जून 2003

संपादक
डॉ. भ. प्र. निदारिया

प्रबंध संपादक
महेश यादव

संपादकीय कार्यालय
10841/44, मानक पुरा, करोल बाग
नई दिल्ली-110 005

सहयोग राशि
एक प्रति : 20 रुपए/वार्षिक : 80 रुपए
यह अंक : 40 रुपए

संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक, अव्यावसायिक एवं अराजनीतिक।
रचनाओं में व्यक्त विचारों से पत्रिका/संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

युग स्पंदन

दिसंबर-2003 अंक

आतंकवाद, संस्कृति एवं सभ्य समाज

विषय पर केंद्रित।

कृपया अधिकतम 500 शब्दों में अपने विचार/अधिकतम 25 पंक्तियों की कविता/कवितांश दिनांक 30 सितंबर 2003 तक अवश्य भेज दें। अनूदित रचना के साथ रचनाकार की अनुवाद-अनुमति भी साथ में भेजें।

युग
स्पंदन

संयुक्त अंक : जनवरी-जून 2003

अनुक्रम

संवाद

'युग स्पंदन' का संयुक्तांक (जनवरी-सितंबर, 2002) मिला। उसे पढ़कर बहुत खुशी हुई। आपने करने योग्य कार्य किया है। माँ के संबंध में हर भाषा के कवियों ने कविता के माध्यम से जो कहा है, वह अद्‌भुत है। हर भाषा की हर पंक्ति में माँ साकार हो उठी है। एक और बात स्पष्ट होती है। माँ के संबंध में हर भाषा का व्यक्ति एक ही दृष्टि से सोचता है और समझता है क्योंकि माँ का रूप एक ही है। × × × माँ इतनी महान है, स्वयं प्रभु के समकक्ष है क्योंकि वह भी स्रष्टा है। हर माँ, माँ होने से पहले नारी होती है। उस नारी का मनुष्य ने इतना अपमान किया है कि क्या उसे भी भूलते बनेगा! क्या मनुष्य नारी के माध्यम से नारी का अपमान नहीं कर रहा है? ये चुनौती भी उभरकर आती है इस पत्रिका को पढ़ने से। × × × आज कितनी बहुएँ जलाई जा रही हैं इस देश में। उनको जलाने वाली सास भी माँ होती है। इस प्रश्न का भी उत्तर देना है। इस अंक के लिए आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। **विष्णु प्रभाकर** (बी-151, महाराणा प्रताप एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली-34)

'युग स्पंदन' के गौरवशाली विशेषांकों की श्रृंखला में भारतीय कविता में 'माँ' नामक विशेषांक संग्रहणीय ही नहीं वरन् हिंदी साहित्य की एक उपलब्धि माना जाएगा क्योंकि संभवतया अभी तक शायद ही ऐसा कोई प्रयास किया गया होगा कि जहाँ इस विषय पर 17 भारतीय भाषाओं की कविताएं एक साथ संकलित की गई हों। यह अपने में सराहनीय प्रयास है। हमारी ओर से हार्दिक बधाई। **डॉ. महाराजकृष्ण भरत** (शारदा कालोनी, पटोली ब्राह्मण, मूठी, जम्मू-181205)

'माँ' पर केंद्रित अंक बेहद पसंद आया। माँ पर ढेर सारी कविताएँ एकत्र, प्रकाशित करके आपने माँ के प्रति जो श्रद्धाभाव दिखाया है, उसकी प्रशंसा किन शब्दों में करूँ? **डॉ. तिप्पेस्वामी** (369, ए बी ब्लॉक, कुवेंपु नगर, मैसूर-570023)

'युग स्पंदन' का समकालीन कन्नड कविता विशेषांक मिला, आभारी हूँ। आप एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक-सारस्वत-यज्ञ संपन्न कर रहे हैं जिसका

महत्व साहित्य के लिए भी है और राष्ट्रीय एकता के लिए भी। **प्रो. रमेश तिवारी 'विराम'** (उमेश स्मृति भवन, मकरंदनगर, कन्नौज-209726, उ.प्र.)

बहु प्रतीक्षित कन्नड कविता विशेषांक आ पहुँचा है। बहुतेक सुप्रसिद्ध कन्नड कवियों की कविताएं इसमें हैं। आपने बहुत अच्छा काम किया है। अन्य भाषाओं की कविताएं राष्ट्रभाषा हिंदी में देना अच्छा है। **हणमंतराव तासगाँवकर** (सुधन्वा, 5वाँ मार्ग, एफ क्रास, सैक्टर-18, प्लाट सं. 25, नवा नगर, बगलकोट-58710, कर्नाटक)

आपने श्रमपूर्वक अच्छी (कन्नड) कविताओं का संकलन दिया है। आप साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को पुष्ट कर रहे हैं। ××× पत्रिका के दीर्घ जीवन की मंगल कामना के साथ। **डॉ. रमानाथ त्रिपाठी** (26, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली-110088)

कन्नड की कविताओं को हिंदी में लाने का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है एवं अनुकरणीय भी। 76 कवियों की कन्नड कविताओं का हिंदी अनुवाद एक ही पत्रिका में पढ़ने को मिला। 'सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक समकालीन कन्नड कविता' जानकारी पूर्ण संपादकीय है। सुंदर प्रकाशन, साज-सज्जा के लिए बधाई। **डॉ. बि. रामसंजीवय्या** (प्रधान सचिव, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद्, बेंगलूर-10)

युग स्पंदन के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे के विषय में विवरण

1. प्रकाशन का स्थान	:	दिल्ली
2. प्रकाशन की अवधि	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम, राष्ट्रीयता और पता	:	कन्हैया लाल, भारतीय, 10841/44, मानकपुरा, करोल बाग, नई दिल्ली-110005,
4. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता, पता	:	डॉ. भ. प्र. निदारिया, भारतीय, ग्रीन हिल अपार्टमेंट, 109, पॉकेट-I, सेक्टर-23, रोहिणी, दिल्ली-110085,
5. उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका पत्र पर स्वामित्व है तथा उन भागीदारों अथवा शेयर होल्डरों के नाम और पते जो पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर रखते हों।	:	कन्हैया लाल, भारतीय, 10841/44, मानकपुरा, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

मैं कन्हैया लाल इसके द्वारा घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और मेरे विश्वास में सही है।

हस्ताक्षर

(कन्हैया लाल)

संपादकीय

भारतीय साहित्य में भावनात्मक एवं सांस्कृतिक एकता का अनुपम समावेश है। 'युग स्पंदन' के दक्षिण भारतीय भाषाओं के चार समकालीन (मलयालम, तमिल, तेलुगु व कन्नड) कविता विशेषांक और माँ (भारतीय कविता) विशेषांक इस साहित्यिक समन्वयात्मक प्रकृति की पुष्टि करते हैं। इनमें से माँ (भारतीय कविता) विशेषांक हेतु आमंत्रित कुछ सामग्री समय पर उपलब्ध नहीं हो पाई थी। इसी सामग्री से परिपूर्ण है प्रस्तुत अंक। इस अंक में 'स्वातंत्र्योत्तर भारतीय कविता में 'माँ' के स्वरूप पर विचार किया गया है। मलयालम काव्य साहित्य में ना. बालामणि अम्मा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी पुस्तक 'माँ' की भूमिका का हिंदी अनुवाद निदर्शनात्मक रूप में मलयालम कविता में माँ के उदात्त स्वरूप को उजागर करता है।

भारतीय भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञों/रचनाकारों एवं अनुवादकों के अनथक व तत्पर सहयोग के कारण 'युग स्पंदन' पत्रिका भारत भर में चर्चित हो रही है। अपने सभी सहयोगियों के प्रति विशेष आभार! आगामी अंकों से 'युग स्पंदन' में पहले की भाँति फिर से किसी एक भारतीय रचनाकार के बारे में विशिष्ट सामग्री देने का प्रयास किया जाएगा। इस क्रम में आगामी अंक तमिल भाषा के प्रख्यात भारतीय रचनाकार वैरमुत्तु पर केंद्रित होगा। भारतीय मनीषी कृपया अन्य भारतीय रचनाकारों पर आधारित सामग्री उपलब्ध करवाने के लिए पत्राचार द्वारा संपर्क करें।

इस बीच लोक गीतों के चितेरे देवेंद्र सत्यार्थी, लोकप्रिय कवि हरिवंशराय बच्चन, प्रख्यात कथाकार शिवानी और प्रखर एवं प्रख्यात हिन्दी-सेवी डॉ. नारायणदत्त पालीवाल के देहांत से भारतीय साहित्य को अपूरणीय क्षति हुई है। साहित्य-पथ के इन सहयात्रियों को 'युग स्पंदन' परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि !

– डॉ. भ० प्र० निदारिया

देश-भर के जाने-माने सृजनधर्मी शब्द-साधकों के साथ-साथ
उदीयमान प्रतिभाओं की सशक्त लेखनी का संयुक्त मंच

इन्द्रप्रस्थ भारती

हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नयन-हेतु सतत प्रयत्नशील

'हिंदी अकादमी, दिल्ली'

द्वारा प्रकाशित एक ऐसी संपूर्ण साहित्यिक पत्रिका जो सहज मानवीय संवेदनाओं, उदात्त जीवन-मूल्यों तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का अनूठा संगम और हर वर्ग के पाठक-समुदाय की अपेक्षाओं के अनुकूल पठनीय एवं संग्रहणीय है।

लगभग एक सौ पचहत्तर पृष्ठ
मूल्य : एक प्रति 25/- रु. मात्र
(वार्षिक 100/- रु. मात्र)

सुरुचि-संपन्न स्वस्थ सकारात्मक अभिव्यक्ति की सूत्रधार 'इन्द्रप्रस्थ भारती' के स्थायी सहभागी बनें। आज ही अपना वार्षिक शुल्क सचित हिंदी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/चैक (स्थानीय) द्वारा भिजवाकर सदस्यता प्राप्त करें।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें –

नानक चंद

सचिव, हिंदी अकादमी, दिल्ली
समुदाय भवन, पदम नगर, किशन गंज, दिल्ली-110007
दूरभाष : 23550274, 23621889, 23533448, 23533950 फैक्स : 23536897
E-mail Address : hindiacademy_delhi@vsnl.net

उड़िया कविता में 'माँ'

डॉ. अजयकुमार पटनायक

उड़िया काव्य-जगत अपने शैशव से ही पारिवारिक रहा है। प्रथम उड़िया महाकाव्य 'शारला महाभारत' (14वीं सदी) में उड़ीसा का जीवन जीवंत हो उठा है। माँ शारला देवी के उपासक सिद्धेश्वर परिड़ा ने बड़ी निष्ठा के साथ वाग्देवी शारला की आराधना की और शारला दास के नाम से परिचित होकर महाभारत के जरिए मातृ-प्रधान उड़िया संस्कृति को वाणी दी। वैसे तो पूर्वांचल के प्रांत उड़ीसा, बंगाल और असम में मातृशक्ति के रूप में देवी पूजन की बहुत ही प्राचीन परंपरा रही है। उड़ीसा के दो-तिहाई जन-जाति के लोग आज भी धरती तथा प्रकृति के कई तत्वों को माँ के रूप में देखते और बर्ताव करते पाए जाते हैं। नदी को माँ और पर्वत को बाप कहनेवाले आदिवासी आज की तारीख में भी इस राज्य में मौजूद हैं। अत: स्थानीय मनोभाव को सम्मानित करते हुए उड़िया कवियों ने हर युग में बहुविध रूप में 'माँ' का वंदन किया है। कभी वह सिंहवाहिनी देवी दुर्गा रूपी माँ के सामने गुहार करता पाया जाता है तो कभी वीणावादिनी माँ से वाक् शक्ति के लिए विनती करता देखा जाता है। हर गाँव में, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, ग्रामदेवी के रूप में मातृ-शक्ति की आराधना करना इस क्षेत्र की विशेषता है। गाँव का कोई भी अनुष्ठान, व्यक्तिगत हो चाहे सामूहिक, ग्राम-देवी का स्मरण किए बिना हो ही नहीं सकता।

आदिकालीन उड़िया साहित्य में जहाँ एक दैवी शक्ति के रूप में माँ की आराधना की गई, भक्ति-काल में पहुँचते-पहुँचते माँ का लौकिक रूप हावी हो गया, चाहे वह माँ कृष्ण की ही क्यों न हो ! वात्सल्य भाव से सराबोर कवि यशोदा माता के रूप में ऐसे पेश आता है, जैसे हर कोई माँ अपने बच्चे के साथ पेश आती है। सूरदास के समधर्मी उड़िया कवि गोपालकृष्ण पटनायक का उद्धरण इस बात की पुष्टि करेगा। कृष्ण जब

मथुरा चले जाते हैं, तब कोयल को संबोधित कर यशोदा विलाप कर रही है, जो माँ और बेटे के वात्सल्य प्रेम की करुणतम अभिव्यक्ति का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आधुनिक काल में शायद ही कोई कवि छूट गया हो, जिन्होंने अपने ढंग से माँ का वर्णन न किया हो। आधुनिक उड़िया कविता के जनक राधानाथ राय से लेकर गंगाधर मेहेर, नंदकिशोर बल, मधुसूदन राव तक सब ने अपने तरीके से माँ का चित्र खींचा। आगे चलकर छायावाद की समकालीन काव्य-प्रवृत्ति को लेकर उड़ीसा में उभरे सबुज युग में कवियों ने अधिकतर प्रकृति में ही मातृत्व के दर्शन किए। अन्नदाशंकर राय, वैकुंठनाथ पटनायक, कुंतलाकुमारी सावत, कालिंदीचरण पाणिग्राही आदि इस कोटि के रचनाकार हैं। गोपबंधु दास, मधुसूदन दास, नीलकंठ दाश जैसे कवियों ने देशमातृका के ही वंदन किए साथ ही प्राकृतिक संपदाओं में भी उन्होंने माँ की छवि देखी और मासूम संतानों की भाँति पेश आए।

समकालीन कवियों में भानुजी राव, कुंजविहारी दाश, रघुनाथ दास, रमाकांत रथ, सीताकांत महापात्र, शरतचंद्र प्रधान, चिंतामणि बेहेरा, ब्रह्मोत्री महांति, प्रतिभा शतपथी से लेकर हृषिकेश मल्लिक, ममता दाश, प्रकाश परिड़ा, गौतम जेना आदि कई कवि ऐसे हैं जो कभी अपनी दिवंगत माँ का स्मृति चारण करते हुए उनके आशीर्वाद की कामना करते हैं तो कई उन्हें देवी रूप में देखते हैं। अधिकांश कवियों ने अपनी माताओं को ग्रामीण परिवेश में ही चित्रित किया है। संभवतः गाँव की सरलता, सहजता, अकृत्रिमता, भोलेपन आदि को वे अपनी माताओं में देखना चाहते हैं, शहर के छल-प्रपंच, धोखा-धड़ी आदि से उन्हें दूर रखना चाहते हैं, कहीं-कहीं प्रासंगिक रूप में कविता के किसी अंश विशेष में भी माँ अथवा मातृत्व का जिक्र होता हुआ देखा गया है। इस प्रकार से देखा जाए तो उड़िया कविता के क्षेत्र में अधिकांश कवियों ने प्रसंगानुसार माँ का चित्र खींचा है, पर माँ की महानता और पवित्रता पर तनिक भी आँच न आए, इसका सदैव ध्यान रखा। 'माँ' शब्द चाहे गाय के साथ जुड़े या धरती के साथ, यह इस मिट्टी की ही विशेषता है कि उसका जिक्र बड़ी इज्जत के साथ होता रहा है।

उर्दू कविता में 'माँ'

डॉ. शाहीना तबस्सुम

इंसानी रिश्तों में सबसे महान और पवित्र रिश्ता माँ का होता है जिसकी बुलंदी को और कोई भी रिश्ता नहीं छू सकता था क्योंकि इसमें कोई खोट, कोई लालच कोई स्वार्थ नहीं होता। माँ की महानता का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि "माँ के क़दमों तले जन्नत होती है।" अर्थात् वह चीज़ जो जीवनभर की नेकियों के बदले मिलती है और हर इंसान अपने दिल में जिसे पाने की तमन्ना रखता है वो चीज़ माँ के कदमों के नीचे होती है। इस रिश्ते की महानता को दुनिया की सारी कौमें और सारे धर्म मानते हैं। (मादरे वतन) मातृभूमि, (मादरे गीती) धरती माता और इनसे बढ़कर (मादरे काएनात) माँ प्रकृति की कल्पना भी माँ की इसी महानता को दर्शाते हैं।

दुनिया भर के साहित्य में 'माँ' पर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है और आगे भी लिखा जाता रहेगा। उर्दू साहित्य में भी गद्य साहित्य के अतिरिक्त 'माँ' पर इतने अशार और नज़्में लिखी गई हैं कि सबका ज़िक्र करना या निरीक्षण करना भी अगर असंभव नहीं तो मुश्किल ज़रूर है।

उर्दू में माँ पर लिखी गई नज़्मों में मौहम्मद इक़बाल की लिखी नज़्म 'वालिदा मरहूमा की याद में' अपनी तर्ज़ की एक ऐसी अछूती नज़्म है जिसकी मिसाल इससे पहले की शायरी में ढूँढ़ना मुश्किल है। इस नज़्म को इक़बाल ने अपने विशेष दार्शनिक रंग व आहंग द्वारा एक अत्युत्तम कृति का दर्जा प्रदान कर दिया है। भारत की स्वतंत्रता के बाद विशेषकर 1960 के बाद की उर्दू शायरी में हमें माँ की जो तस्वीर और उसका जो किरदार नज़र आता है वो इससे पहले की शायरी से बहुत भिन्न है और ज़ाहिर है कि बदलती हुई ज़िंदगी, बदलते हुए समाज और बदलते हुए चिंतन के अनुसार इसे पहले से भिन्न होना चाहिए। यह कुछ अशार देखिए :-

मश्अले जाँ बनके मुझको राह दिखलाती रही
सबकी माऐं होंगी साया मेरी माँ है रोशनी -(शाज़ तमकनत)

कितने बरसों से मेरी माँ नहीं सोई यारो
मैंने इकबार कहा था "मुझे डर लगता है।" –(ताबिश)

मैं रोया परदेस में भीगा माँ का प्यार
दुख. ने दुख से बात की बिन चिट्ठी बिन तार। –(निदा फ़ाजली)

निदा फ़ाज़ली ने अपने पिता की मौत पर जो नज़्म लिखी थी (तुम्हारी कब्र पर मैं फ़ातेहा पढ़ने नहीं आया) वो अपने आप में एक अनोखे व्यक्तिगत शोकगीत का दर्जा रखती है और अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण एक यादगार नज़्म कही जा सकती है लेकिन माँ पर जो निदा फ़ाज़ली ने गज़ल लिखी है वो जज़्बा फ़िक्र और फ़न के लिहाज़ से मुद्दतों याद रखी जाने वाली एक ऐसी नज़्म है जिसमें एक हिंदुस्तानी माँ की सच्ची छवि उभरती है।

'माँ' की मौत पर सादिक़ का शोक गीत (नौहा) भी उर्दू साहित्य में एक अद्वितीय नज़्म का दर्जा रखता है। यह नज़्म अपनी तकनीक, चिंता, भाषा और शैली का एक बेमिसाल नमूना है। घर की छत गिर जाने के एहसास से शुरू होकर यह नज़्म रक्त और मांस की एक अंतहीन श्रृंखला के ज़िक्र पर ख़त्म होती है :–

"तेरी छातियों से
निकलती हुई दूध की धार
मेरे बदन में लहू बन गई
मैं से तू बन गई
तू से मैं बन गया
रक्त और मांस का
सिलसिला बन गया।" –(सादिक)

बिलक़ीस ज़फीरुल हसन, रफ़िया शबनम आबदी, मलका नसीम और ज़ोया ज़ैदी शायरात द्वारा माँ पर लिखी गई नज़्में अभिन्न कही जा सकती हैं। मेरे नज़दीक इन नज़्मों की सबसे पहली और बड़ी विशेषता यह है कि इनकी रचनाकार महिलाएं हैं जो स्वयं भी माँ हैं और इस नाते माँ होने के सुख और दुःख से बखूबी वाक़िफ़ हैं। रफ़िया शबनम आबदी ने अपनी नज़्म

में माँ को संबोधित करके यह कहते हुए कि माँ तेरे आँचल के सारे फूल चुने मैंने, माँ तेरे कंगन के सारे गीत सुने मैंने, माँ अपनी पलकों पर तेरे ख़्वाब बुने मैंने, अपनी नज़्म का अंत कितनी खूबसूरती से निम्न पंक्तियों पर किया है :–

"माँ तेरी वो सोच तो अब मेरा हिस्सा है
माँ हम दोनों का एक ही जैसा तो किस्सा है।"

बिलक़ीस जफ़ीरुल हसन ने माँ पर कई नज़्में लिखी हैं जिन में विभिन्न कोणों से माँ की कई तस्वीरें बड़े कलात्मक ढंग से उभारी गई हैं। उनकी एक नज़्म 'हाउस वाइफ़' की ये पंक्तियाँ देखिए –

"मेरी माँ, मालकिन घर की कहलाती थी और उसे
उम्र भर अपने घर में कहीं एक जगह न मिली
घर के सब लोग आराम से पैर फैला सकें, इसलिए
उम्र भर पाँव अपने सिकोड़े रही
और इसी हाल में एक दिन मर गई।"

मलका नसीम की नज़्म में ज़िंदगी के सफ़र में मुसलसल चलती हुई माँ की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति बड़े मार्मिक अंदाज में हुई है लेकिन इससे उभरने वाला यथार्थ दूसरी महिलाओं की कविताओं से बहुत अधिक भिन्न नहीं :–

"आँचल में ममता की खुशबू
आँसू पर मुस्कान का जादू
बर्फ़-सी रातें
गोद की गरमी
सोता जिस्म और जागती आँखें।"

ज़ोया ज़ैदी ने अपनी नज़्म माँ की नींव एक ख़बर पर रखी है लेकिन इसमें जिस जज़्बे की अभिव्यक्ति मिलती है उसकी सच्चाई से इन्कार नहीं, कलात्मक दृष्टि से कमज़ोर होने के बावजूद इस नज़्म में ऐसी कोई बात ज़रूर है जो दिलों को छू लेती है और यही वो बात है जिसके कारण इस नज़्म को यहाँ शामिल किया गया है।

उर्दू में माँ विषय पर रचित नज़्मों का यह चयन किसी भी तौर पर संपूर्ण तो नहीं कहा जा सकता फिर भी इनके अध्ययन से एक अंदाजा ज़रूर लगाया जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर उर्दू नज़्म में इस विषय पर क्या सोचा और महसूस किया जा रहा है और इसकी अभिव्यक्ति किस अंदाज़ में हो रही है।

स्वातंत्र्योत्तर कश्मीरी कविता में माँ

डॉ. महाराजकृष्ण भरत

कश्मीर में माँ के बारे में कई अवधारणाएं प्रचलित हैं। कश्मीर की धरा को सभी कश्मीरी 'मऽज कशीर (माँ कश्मीर) और हिंदू समुदाय के लोग जगत जननी दुर्गा के रूप में पूजते हैं। इसे जन्म देने वाली माँ की महिमा भी बढ़ जाती है, क्योंकि उन्हें भी देवी का-सा दर्जा प्राप्त है। कश्मीरी कवियों ने जहां 'मऽज कशीर' के व्यापक रूप को दर्शाया है, वहीं उसके 'देवी' रूप में माँ के विभिन्न रूपों की आराधना भी की गई है। कश्मीर शैव दर्शन का एक प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ शक्ति को शिव का आधार माना गया है। माँ का बड़प्पन इस तरह भी आलोकित हुआ है कि कुपुत्र जन्म ले सकता है पर माता कभी कुमाता नहीं हो सकती।

कश्मीरी लीला काव्य में सर्वत्र देवी की आराधना हुई है। पंचस्तयी का एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

> ''माया कुंडिलिनीक्रिया मधुमती, काली कला मालिनी
> मातंगी विजया जया भगवती, देवी शिया शांभवी
> शक्तिः शंकर वल्लभा त्रिनयना, वाक् वादिनी-भैरवी
> सींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारी तसि।''

अर्थात् सृष्टि को बनाने वाली, कुंडलिनी में वास करने वाली, छह ऐश्वर्यों वाली देवी, शंकर की शक्ति, तीन नेत्रों वाली, सरस्वती रूपा भैरवी ...हे माता, तुम भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती हो। यही भाव कश्मीरी की सभी देवी आराधनाओं-प्रार्थनाओं में हमें मिलता है, जैसे :-

- "आई शरन् चच्य पाद्न माता" (अर्थात् हे मां ! हम तुम्हारे चरणों में आए हैं।)
- "पाद्‌य कमलन त्ल् ब् आस्य करनि मऽज चऽनि अस्तुति"
  (अर्थात् ऐ माँ ! हम तुम्हारे कमल रूपी चरणों में शरण लेने आए हैं, तुम्हारी स्तुति करने)
- "मऽज शारकैय कर दया" (अर्थात् माँ शारिका दया करो)

कवि ने चिनार के पेड़ों को भी माँ के रूप में माना है। कश्मीर में चिनार एक विशाल वृक्ष है, जिसका कश्मीरी नाम बूण्य है। 'बूण्य' शब्द 'भवानी' का ही अपभ्रंश है। माँ के आंचल की तरह चिनार का आंचल भी विशाल और शीतल होता है। कश्मीर में बूण्य आज भी पूजनीय है। इसके कटने पर स्वतंत्रता से पहले भी प्रतिबंध था और आज भी है।

कश्मीरी भाषी हिंदी और कश्मीरी कवियों ने माँ के स्वरूप को अपने-अपने ढंग से दर्शाया है। आज के संदर्भ में कश्मीरी भाषी हिंदी कवि डॉ. अग्निशेखर अपने काव्य संग्रह 'मुझसे छीन ली गई मेरी नदी' में यूँ आतंकित हो उठते हैं :–

"मुझसे छीन ली गई चिनार की वीछां
उसका कर दिया गया लिंग परिवर्तन
वह थी मेरी भुवन-व्यापिनी माँ
उसके रोम-रोम से मुस्कुराती थी
मेरे सपनों की कोंपलें।" –(पृष्ठ 59)

पिछले एक दशक की आतंकवादी गतिविधियों ने कश्मीर में जीवन के किसी भी क्षेत्र को अपनी लपटों से अनछुआ नहीं छोड़ा। माँ को लेकर जिस तरह की व्यथा कवियों ने आतंकवाद से पीड़ित होकर व्यक्त की है उसकी झलक हमें डॉ. अग्निशेखर की कविता 'नुंद ऋषि', महाराजकृष्ण भरत की 'नवरेह के आगमन पर' (फिरन में छिपाए तिरंगा), और ब्रजनाथ बेताब की कविता 'मैं कवि नहीं हूँ रे', में स्पष्ट परिलक्षित होती है। 'नुंद ऋषि' कविता में माँ का एक दृष्टांत :–

"रोती है यहाँ जलावतनी में मेरी माँ
इत्मीनान से मरने की जगह से वंचित
बरसों पुरानी काठ की संदूकची को याद कर
वह पगला जाती है इस कुंभीपाक में" (पृष्ठ 25)

'नवरेह के आगमन पर' अपनी सांस्कृतिक धरोहर को बताने का कश्मीरी पंडितों का एक प्रयास दर्शाने की कोशिश है :-

"रात भर माँ/सोचती रही/उस भरी थाली के बारे में
.....नवरेह की पहली प्रभात में भरी थाली का मुँह देख
होता है शुभ नववर्ष में प्रवेश करना।" (पृष्ठ 53)

आतंकवाद से पीड़ित होकर पलायन करने पर मजबूर एक कश्मीरी पंडित की दुर्दशा का चित्रण ब्रजनाथ बेताब की कविता में 'मैं कवि नहीं हूँ' में हुआ है, जहां त्रासदी की एक दुर्भाग्यपूर्ण अभिव्यक्ति यह है कि एक परिवार को एक छत भी नसीब नहीं। प्राय: माँ और पुत्र को अलग-अलग स्थानों पर आश्रय ग्रहण करना पड़ता है :-

"मेरी कविता/मेरी दादी माँ है/जिसे निकाल दिया है
अपने बेटे ने/बुढ़ापे में/
और भटक रहा है जिसके साथ/मेरा बचपन
रिश्तेदारों के टूटे-फूटे कमरों में।"

माँ जननी है, जन्मदात्री है, दूध पिलानेवाली पोषक है। चाहे माँ से दूध पीने वाला बच्चा बिछुड़ जाए या फिर चालीस वर्ष की आयु के व्यक्ति से माँ का आँचल, कोई भी माँ के विछोह की चोट को सहन नहीं कर सकता। कुछ ऐसे ही भाव मोतीलाल कौल नाज़ ने 1986 में अपनी माँ के देहांत पर 'पोशकुज' (फूलों की झड़ी) नाम की कृति में व्यक्त किए हैं :-

"हे माँ, तुम्हारी याद आएगी तो मैं क्या करूंगा,
तुम्हें कहां खोजूँगा, मैं क्या करूंगा?"

माँ का वर्णन करना सहज नहीं। वह अपने आप में शक्ति, ममत्व, वात्सल्य, दुलार की प्रतीक है, सृजन और लालन-पोषण की देवी है।

माँ विषय पर कश्मीरी कविताओं के संदर्भ खोजने के लिए जब इस लेखक ने ख्यातनाम कश्मीरी कवि अर्जुनदेव मजबूर से संपर्क साधा, तो उनका यही उत्तर था कि उन्होंने माँ नाम से कोई कविता नहीं रची है। कवि ओमकार नाथ शबनम, पी एन शाद, मोतीलाल कौल नाज़ से भी सहयोग की अपेक्षा की। इधर कश्मीरी कवि प्यारे हताश और ब्रजनाथ बेताब ने कुछ हौसला बढ़ाया। उन्होंने अपनी कविताएँ भी भेजीं और प्रतिक्रिया भी दी। हताश का मानना है कि कश्मीरी में माँ विषय पर कविताएँ नगण्य ही हैं। कवि बेताब का कहना है कि कश्मीरी कविता में माँ के व्यापक रूप को दर्शाया गया है। कश्मीरी कवि घाटी को 'मऽज कशीर' (माँ कश्मीर) के रूप में मानते हैं। उनका कहना है कि कश्मीर की संस्कृति में माँ का एक प्रमुख रूप 'दोद मऽज' (दूध पिलाने वाली माँ) है। यह वह माँ है जो बच्चे को उस समय दूध पिलाती है, जब उसे जन्म देने वाली माँ के स्तन से किसी कारणवश दूध का प्रवाह नहीं हो पाता। 'दोद् मऽज' की विशेषता यह है कि हिंदू बच्चों को मुसलमान माँ दूध पिलाती थीं और मुसलमान बच्चों को हिंदू माँ। इसका महत्वपूर्ण और साहित्यिक उदाहरण ललद्यद और नुंद ऋषि का है, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि जब नुंद ऋषि ने जन्मने के बाद माँ का दूध नहीं पिया, तब ललद्यद ने उनके मुँह में स्तन डालकर कहा, "बालक जब तुम जन्म लेने से नहीं शर्माए तो दूध पीने से क्यों कतराते हो।" ललद्यद के ये शब्द सुनकर नुंद ऋषि ने स्तनपान किया।

शायद तभी से हिंदू और मुसलमान दोनों समुदायों में लल्लेश्वरी को ललद्यद कहा जाने लगा। 'द्यद' इस संदर्भ में बड़ी माँ का कश्मीरी रूपांतरण है। कश्मीर में कई लोग ललद्यद को आज भी 'लल मऽज' के नाम से पुकारते हैं। ललद्यद और नुंद ऋषि की यही परंपरा आगे चलकर कश्मीरियत बनी और पिछले दशक में आतंकवादियों ने सबसे पहले इसी परंपरा को निशाना बनाया।

कश्मीर के विख्यात कवि फारुक नाज़की ने इसी वेदना को अपनी इन पंक्तियों में व्यक्त किया है :–

"रत्दअई प्लव महाराज़न हिंद

यत्य यारबलन पैठ माऽज्य छलान।''
(अर्थात् दूल्हों के रक्त सने कपड़े यहाँ माँएं धोती घाटों पर)

उल्लेखनीय है कि कश्मीरी साहित्य में जब भी कविता के प्रादुर्भाव की चर्चा होती है, तो चौदहवीं शती की संत कवयित्री ललद्यद का संदर्भ अवश्य ही आता है। उन्हें कश्मीरी कविता की आदि कवयित्री माना गया है। सोलहवीं शताब्दी में कश्मीरी कविता में माँ के स्थान पर 'माल्युन' (मायका) शब्द का प्रयोग हुआ। 16वीं शताब्दी में हब्बाखातून और अठारहवीं शती में अरणिमाल ने अपनी रचनाओं के गीत गाते हुए मायके का बखान किया है। उन्नीसवीं और बीसवीं शती में कश्मीरी कविता में व्यक्तिगत माँ पर कम और कश्मीर घाटी को माँ और देवी के रूप में महसूसने पर अधिक कविताएं लिखी गईं।

कश्मीरी साहित्य पर शोधपरक दृष्टि रखने वाले अवकाश प्राप्त हिंदी विभागाध्यक्ष (कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर) प्रो. (डॉ.) भूषण लाल कौल का कहना है कि पूरी कश्मीरी कविता उनके समक्ष है। उन्होंने कहा कि राही, महजूर, साकी, आज़ाद ने माँ के बारे में इतना कुछ नहीं लिखा। साकी, फाज़िल कश्मीरी की भक्ति कविता, में माँ का संदर्भ जरूर है। कृष्ण जू राजदान और परमानंद के राधा स्वयंवर में भी माँ का उल्लेख है।

इस प्रकार कश्मीरी कविता में माँ का संदर्भ कहीं मद्धम तो कहीं तीव्र हो उठा है।

स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ

डॉ. चंद्रलेखा

स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ विषय पर लिखने से पहले कोंकणी कविता की स्वातंत्र्योत्तर पृष्ठभूमि को ऐतिहासिक, सामाजिक, राजकीय दायरे में, संक्षिप्त रूप में जाँचना आवश्यक है। गोवा को सन् 1961 में, दिसंबर की 19 तारीख को, पुर्तगाली शासन से मुक्ति मिली, जबकि पूरा भारतवर्ष 1947 में आज़ाद हो चुका था। गोवा के शासकों ने और जनता ने महाराष्ट्र

में विलीनीकरण की बजाय स्वतंत्र रहना स्वीकार किया और स्वतंत्रता के साथ-साथ राज्यभाषा कोंकणी भी उसका उचित स्थान प्राप्त कर पाई। इस दौर में गोवा की कोंकणी भाषा में बहुत सारे कवि अपना-अपना स्वर साध रहे थे। आरंभ के दौर में माँ के अलग-अलग रूप परंपरागत स्वरूप के ही द्रष्टव्य होते हैं, जिसमें धरती, प्रकृति, मातृभूमि, मातृभाषा जैसे विषय हैं। कहीं पर रूमानी प्रवृत्ति है तो कहीं पर यथार्थवादी दृष्टि है। यह प्रवृत्ति लगभग 1985 तक चलती है और उसके बाद रचनाकारों की दृष्टि में परिवर्तन दिखाई देता है, जिसमें महिलाओं की दृष्टि ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस बदलाव का मूल कारण कामकाजी महिला का तनाव है। घर और ऑफिस की आपाधापी में माँ का दायरा विस्तृत हुआ है पर पिता पुराने दायरे में ही घूमता नज़र आता है। माँ ने आर्थिक जिम्मेदारी उठाने के लिए घर के बाहर कदम रखा पर बाप ने घर की जिम्मेदारी में माँ का हाथ बँटाना बहुत कम रूप में अपनाया। कन्नड लिपि में लिखनेवाले कोंकणी कवियों के संवेदन ज्यादा यथार्थपरक हैं जबकि गोवा की नागरी लिपि में लिखनेवाली धारा रूमानी संवेदन ज्यादा अपनाती दिखती है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं कोंकणी कविता के हिंदी भावार्थ प्रस्तुत करती जाऊँगी जिससे साफ चित्र उभर सकें :-

शणै गोंयबाब–मधुर मेरा गोवा, सुंदर मेरा गोवा... (वज्रलिखणी/पृ. 1)

बयाभाव–कोंकण हमारा देश, माँ कोंकणी भाषा... (सड्यावयली फुलां/पृ. 3)

चा.फ्रा. डी, कोस्टा–उस तरफ माँ का रोना, कुछ नहीं खिलाने को मरती हूँ मैं। (सोश्याचे कान/पृ. 14)

मनोहरराय सरदेसाय–अमीर की माँ कहती/बच्चे ने कुछ नहीं खाया, गरीब की माँ कहती/बच्चे के लिए खाने को नहीं। (पिसोळी/पृ. 64)

फा. लुवीस बोतेल्हो–तुम्हारी और हमारी माँ सब की प्रेमाळ माँ (कानडी माती कोंकणी कवी/पृ. 13)

आंब्रोज डी, सोजा–माँ-बाप मातृभूमि/मातृभाषा प्रेमाळ। (कानडी माती कोंकणी कवी/पृ. 26)

चार्ल्स डी' सोजा–कोई मुझे नहीं देखता, जानबूझकर सब अनजान।/कब मरेगी यह बुढ़िया, सोचते सब मेहरबान। (कानडी मल कोंकड़ी कवी/पृ. 38)

पांडुरंग भांगी–यही मिट्टी कभी बनती संहारक चंडी।

कभी रक्त पीनेवाली बनती काली... (चांफेल्ली सांज/पृ. 41)

नागेश करमली–....सह्याद्री के मूल से.....हे माँ, हे भूमि, माता मेरी। (वंश कुळाचे देणें/पृ. 39)

रॉन लुवीस–उपकार तुम्हारा कैसे मानूं ? तुम्हारा बलिदान.../ऋण कैसे उतारूं रक्त के उस मूल्य का? (कानडी माता कोंकणी कवी/पृ. 65)

फ्रांसीस सलदान्हा–संतोष पावें कोंकण माता। (कानडी माता कोंकणी कवी/पृ. 58)

जे.बी. मोरायस–तीन हाथ का टुकड़ा, तीसों तरफ तारतार।/साठ सालों का कीचड़, उसकी कृश देह ने है पचाया... (भितरले तुफान/पृ. 58)

प्रकाश पाडगांवकार–चरित्र-हीन शराबी मागदालीन/लोगों की हंसी मज़ाक झेलकर/लातें खाकर....अपने बेटे के साथ.../अनराधार रो रही है... (वास्कोयन/पृ. 33)

सूर्या अशोक–अम्मा के कष्टों से मैं अनजान/अब मैं भी बनी हूँ अम्मा/अब आया समझ में मेरी/देवों की कृपा और अम्मा की माया भी। वर्णन के लिए छोटे पड़ते शब्द..... (काव्योद्यान/पृ. 43)

परंपरावादी और यथार्थवादी माँ-चित्रण में सन् 1985 के बाद बदलाव दृष्टिगत होता है। इस बदलते माहौल में बहुत कुछ बदला है। प्रकृति हरी-भरी थी अब लौहतत्वों के कणों से नहाकर लाल बन गई है। मांडवी, जुवारी में औद्योगीकरण का प्रदूषण है, फेफड़ों में लौहकणों का बसेरा है। जमीन से लेकर आसमान तक पर्यावरण में भी प्रदूषण है। छोटे-छोटे घर बड़े कंपाउंड थे। वहां बड़ी इमारतें और छोटे कमरे हैं। जमीन के दाम आसमान को छूते हैं और परिवार के लिए पति-पत्नी दोनों को घर का अर्थशास्त्र संभालने के लिए घर से बाहर जाना जरूरी हो गया। पिता के लिए यह बात

आम थी पर माँ सोचने पर मजबूर हो गई....नूतन साखरदांडे कहतीं हैं ''मेरे बच्चो! मैं मजबूर हूं तुम्हें आया के पास छोड़ जा रही हूँ। तुम्हारी सच्ची माँ कौन है ? जो पूरा दिन ऑफिस में काम करते-करते तुम्हारे बारे में सोचती रहती है वह या जो तुम्हारे साथ पूरा दिन रहती है वह ? मेरे नन्हे-मुन्नो, मुझे समझने की कोशिश करो, मैं हूँ तुम्हारी मजबूर माँ।''

इससे बड़ी मजबूरी और क्या होगी कि माँ अपने बच्चों से कहे कि ''मुझे समझने की कोशिश करो'' कौन किसको समझे ? बड़े छोटों को या छोटे बड़ों को? छोटों को छुटपन में ही बड़े होना पड़ता है। कैसी विवशता है ? यह विवशता कामकाजी महिला की है जिसका चित्रण अब मुखर होता दिखता है और समय की माँग है कि यह बदलाव कवयित्री ज़्यादा अनुभूत करती है। स्व. अमिता सुर्लकार ने माँ की परंपरागत छवि से इतर जो क्रांतिचेता छवि दी है वह कोंकणी साहित्य में निरंतर विकासमान है।

स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ

मनुजा जोशी

स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी साहित्य में यदि सबसे अधिक सरस है, तो वह है कोंकणी काव्य। हृदय की सभी कोमल-मृदु भावनाएँ, विरह-वेदना, मन की कोमलता, आशा, उल्लास, उन्माद आदि भावानुभूतियों का कलात्मक विकास कोंकणी कविताओं में अभिव्यंजित हुआ है। 'आयज रे धोलार पडली बडी' यह काव्य-संगीतिका लेकर सन् 1961 में सरस्वती के मंदिर में प्रवेशित हुए डॉ. मनोहर राय सरदेसाय। तदुपरांत सन् 1962 से लेकर आज तक आपके अनगिनत काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

आपका रोमन लिपि में लिखा हुआ एक काव्य संग्रह है 'कोंकणी कविता', जिसमें 'म्हणटा आवय' नामक एक कविता है जिसमें आपने बड़े ही सुंदर ढंग से 'माँ' विषय पर सृजन किया है। कलात्मक रूप से कवि कहता है कि एक माँ के लिए उसका लाल हमेशा निर्बोध, अज्ञानी, बड़बोला और नासमझ ही रहता है। प्रस्तुत है 'म्हणटा आवय' कविता की काव्य पंक्तियाँ :-

कहे माँ
अपार ज्ञान से भरा
एक मरतबान हूँ मैं
फिर भी कहे माँ मुझे
सवार है तुझ पर पागलपन
कितनी मैंने पढ़ लीं किताबें
फिर भी कहे माँ मुझे
अभी तू नासमझ है
संसारभर में कितना घूमकर
आया हूँ मैं
फिर भी कहे माँ मुझे
बेटा दौड़ना मत
कितनी अक्लमंदी मैंने लोगों को दी
फिर भी कहे माँ मुझे
छोकरा कितना अनजाना।

कोंकणी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर काव्यशास्त्र में काव्य-सृजन की प्रक्रिया तो अधिकतम मात्रा में हुई। यद्यपि 'माँ' विषय को छूने वाले कवि बहुत कम संख्या में निकले। फिलहाल 'माँ' विषय पर सृजन करने का श्रेय प्राप्त करने वालों में से श्रेष्ठ कलाकार कवि हैं—कुमारी अमिता सुर्लकार-प्रकाशित काव्यसंग्रह 'अमिताच्यो कविता'। अपनी किशोर अवस्था में लिखी कविता 'म्हजी आवय' में अमिता जी ने माँ के प्रति अपनी कोमल भावनाएँ अभिव्यक्त की हैं। अपनी ममतामयी माँ कवयित्री को सबसे भिन्न, परोपकारी तथा कच्चे आम के अचार के समान स्वादिष्ट लगती है। किशोर अवस्था में भी कवयित्री का काव्य-सृजन का प्रयास उसके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करता था पर दुर्भाग्यवश आज यह कवयित्री हमारे बीच नहीं रही।

श्री ज्ञानेश्वर कमलाकांत तारी द्वारा लिखित काव्यसंग्रह 'ऋतुमति' में कवि की दो कविताएँ 'दी माय' और 'आवय' माँ विषय पर हैं। प्रस्तुत

कविताओं में भावानुभूति की स्पष्टता, साधना की सफलता और काव्य कला की प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होती है।

असीम प्रिय की कृपा से सहज ही हृदय की निराशा, दुःख, कठोर भाव, आशा, सुख एवं कोमल भावनाओं में परिणत हो जाते हैं। ऐसा भाव व्यक्त करने में सफल रहे हैं कोंकणी कवि श्री रोहिदास मंगेशकर। आपके काव्यसंग्रह 'मोतयां' में 'हे माये' कविता एक माँ का चरित्र-चित्रण करने में सक्षम रही है।

'माँ' विषय को केंद्रबिंदु बनाकर अपने काव्यसंग्रहों की माला गूँथने में, उनका गठन करने वाले अन्य कवि हैं श्री आदित्यजी–काव्यसंग्रह 'गोंयचो परमळ' कविता 'आवय मोग', श्री आर रामनाथ–काव्यसंग्रह 'मळब रंगमाची'–कविता-शीर्षक 'आवय'। श्री सुरेश शरद लोटलीकर-काव्यसंग्रह 'पैस' कविता 'आवय'। श्री शशिकांत, पुनाजी–काव्यसंग्रह 'गाज' कविता शीर्षक 'आये'। श्रीमति नीला तेलंग-काव्यसंग्रह 'काळजाची भरती' कविता-'माया'।

उपर्युक्त रचनाकारों ने माँ की ममता का साक्षात्कार कराने के उद्देश्य से ही, अपने-अपने काव्यों का सृजन किया है। माँ की करुणार्द्रता को लक्ष्य बनाकर मार्मिक अभिव्यक्ति कविताओं में दृष्टिगोचर है।

बालगीत संग्रह में 'माँ' विषय को लेकर नन्हें-मुन्नों का मनोरंजन करने में अग्रसर रहे श्री अभयकुमार वेलींगकर तथा श्रीमती विमल प्रभुदेसाय। आपके क्रमशः 'सोशेंमाम सोशेंमाम' तथा 'जनयो वोळ' काव्यसंग्रह बालकों का हृदय काबिज करने में सफल रहे हैं। 'आई वेगेंत' एवं 'आमची आई' कविताओं का सस्वर पठन या कंठस्थीकरण करके छोटे बच्चे आनंदविभोर हो जाते हैं। माँ के ममतामय आँचल में मिट जाने को उत्सुक हो जाते हैं।

सारांश में इतना ही कहा जा सकता है कि 'स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ' विषय पर गुणात्मक काव्य तो हुआ पर मात्रात्मक काव्यसृजन नहीं हुआ। अर्थात् 'माँ' विषय को लेकर कोंकणी कवियों ने दर्जेदार कविताएँ तो कीं पर अफसोस की बात यह रही है कि इस विषय पर कविताओं की संख्या एकदम अल्प रही है। फिर भी कोंकणी भाषा को अन्य भारतीय

भाषाओं के स्तर पर लाने का प्रयास कराने वाले तथा 'माँ' विषय को सफलतापूर्वक हाथ लगाने वाले गोवा के कुछ नामवंत कवि रहे हैं—श्री नागेश करमली, श्री पुंडलीक नायक, श्रीमती विजयाबाय सरमळकर, श्री सुनील पालकर एवं श्री जॅस फर्नादीश। प्रस्तुत कवियों की कविताओं में तथा उनके काव्य सृजन 'माँ' विषय को लेकर बचपन के मधुर क्षणों का स्मरण, विरह-वेदना, स्निग्धता तथा माँ की ममता की स्वच्छता को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है। तात्पर्य उपर्युक्त प्रत्येक कवि ने भावाभिव्यक्ति की रमणीयता, अनुभूति की स्पष्टता, मार्मिकता तथा अलंकार योजना का भरपूर प्रदर्शन किया है। 'माँ' की वत्सल मूर्ति का रूप साक्षात आँखों के सामने साकार करने में कवि सफल रहे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर गुजराती कविता में 'माँ'

मंजु दवे

शास्त्रों में लिखा है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवताः।" नारी का सम्मान, देवताओं का सम्मान है। नारी का सबसे पावन रूप है माँ का। आरंभ में गुजराती कविता का मूल स्वर भक्ति का रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता मिलने पर इस स्वर में राष्ट्रभक्ति का समावेश हो गया। किंतु स्वतंत्रता के बाद जनमानस के सपने चूर-चूर हो गए। तब कवियों का आक्रोश फूट पड़ा। जीवन में समाई तरह-तरह की समस्याओं पर केंद्रित करके रचनाएं लिखी जाने लगीं।

गुजराती कवियों ने माँ को पृथ्वी की तरह विशाल तथा ममतामयी माना है। वह शक्तिरूपिणी है। माँ का हृदय गंगा की तरह विशाल और दया का सागर है। माँ साक्षात् दुर्गा है –

चपटी भरी चोखा ने घी नो छे दिवड़ो
माँ तारे मंदिर में आठ मानो मेढो भराये छे
ढम ढमा ढम ढम ढमा ढम ढोलका बाजे
ढोलका वाजे ने शू तारे वाजे
माँ तारा मंदिर में.....

गुजराती में कई चर्चित् कविता संग्रह प्रकृति, आधुनिक विसंगतियों, भक्ति और समतावादी भावों को लेकर सामने आए हैं। जैसे कविता (संपादक : सुरेश दलाल), कविलोक (संपादक : राजेंद्र शाह, धीरू परीया) गजल 101 (संपादक : रमेश पुरोहित), कदंब (पीयूष पंड्या), खरा छो तमे (कैलास पंडित), जळना पड द्या (हरिकृष्ण पाठक), ईश/लोकलीला (सुंदरम) आदि। स्नेह रश्मि के गुजराती में 'हाइकु' प्रवेश के बाद इसकी एक लंबी व समृद्ध परंपरा मिलती है। गीत, ग़ज़ल, सोनेट एवं अछांदस रूपों ने गुजराती कविताओं का श्रृंगार किया है।

बहुत से नए चर्चित नाम हैं जो विविध भावबोधों पर काव्य रचना कर रहे हैं–गीता परीख, जया मेह्ता, हीरा पाठक, हरींद्र दवे, दया राम, कैलास पंडित, नयन देसाई, सरूप ध्रुव, सुजाता पियंवदा, प्रीतिसेन गुप्ता, दलित कवियों में घायल, दयाराम, श्याम साधु आदिल आदि। दलबंदी से अलग प्रगतिवादी सोच को लेकर कविता लिखने वाले बलवंत राय ठाकोर, रामनारायण पाठक न्हानालाल आदि की कविताओं में, "माँ नी झलक ओजस्वी, विशाल ते ममतामयी झलक स्पष्ट झलकाए छे।" माँ के रूप में नारी अपने बच्चे के लिए हर संभव मंगल कामना करती है। संतान भी 'माँ' को सर्वोपरि सम्मान देती है। इसके साथ ही उसे आदर्श गृहिणी के रूप में भी प्रतिस्थापित किया गया है। प्रणय के क्षेत्र में असफल होने पर भी कवि माँ के प्रति कठोर नहीं है क्योंकि उसकी वैयक्तिक चेतना समष्टि में समाहित हो चुकी है। पुत्र की मृत्यु से संत्रस्त माँ का हृदय अत्यंत विचलित होता है। नरसिंग राव की 'स्मरण संहिता' में आंतरिक क्षोभ आभासित होता है। निषेध में निर्माण का प्रयास कर रही गुजराती कविता में माँ का स्वरूप शुद्ध, पवित्र एवं मौलिक उद्भावनाओं से जुड़ा है।

तमिल मानस में माँ का स्वरूप

डा. एच. बाल सुब्रह्मण्यम

जगतः पितरौ पार्वती-परमेश्वर को शिवलिंग में रूपायित करने का श्रेय तमिल मानस की कल्पना को जाता है। दीर्घवृत्ताकार में एक शिला पड़ी हुई अवस्था में और उसके मध्य बेलनाकार शिला खड़ी हुई स्थिति में। एक माँ है, दूसरा पिता यहाँ बिंबायित है सृजन-कर्म। सृजन के बिना न संसृति है, न संस्कृति और न ही कविता शिव-शक्ति ऐक्य को अभिधार्थ में व्यंजित करने वाली यह कल्पना किसी कविता से कम नहीं है। शिवलिंग का यह स्वरूप भले ही बाद में सार्वभौम हो गया हो, किंतु इस रूपायन की आद्य-कल्पना द्रविडी रही, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती क्योंकि आदिम युग में शिव केवल द्रविड देवता रहे और फिर अनेक बार देवासुर-संग्रामों के अनंतर सुलह-समझौते के फलस्वरूप कैलाश के तुंग शिखर पर महादेव रूप में प्रतिष्ठित हुए। जब शिव की बात करते हैं, माँ शिवानी को उससे अलग नहीं कर सकते। नारी माँ बनने को जब उत्सुक होती है तभी कोई पिता बनता है। यही मातृ-कल्पना एक प्राचीन तमिल कविता में प्रस्फुटित हुई :-

युग-युग से पड़ा था पर्वत
सर्वथा स्थविर और निश्चल निस्पंद
दूर-दूर तक कोई कल्पना नहीं कर सकता
न जाने कैसे
भीतर ही भीतर क्रियारत हुई कोई ऊर्जा
जिसकी गतिमय चंचलता से ऊष्मलता से
धीरे-धीरे बहुत धीमे-धीमे
अंदर ही अंदर पिघलता गया पाषाण
इतना मृदुल बना इतना मसृण बना
कि एक दिन फूट पड़ा इक अंकुर

दूब का
फिर देखते ही देखते
पट गया पहाड़ हरियाली से ।

स्पष्ट है जो स्थविर था वह शिव था और जो गतिशील ऊर्जा थी वह शक्ति थी। एक भव था तो दूसरी भवानी। भवानी शक्ति के बिना भव-शिव का कोई मूल्य नहीं है। शक्ति इकार-रूपिणी है। शिव से इकार हटाइए तो पाइए कि शिव मात्र 'शव' है। हाँ, वह जड़ था पत्थर की भांति और ऊर्जा का स्पंदन हुआ, माँ की गतिशीलता का संयोग हुआ तो वह शिव बना। आधुनिक वैज्ञानिक युग का परमाणु-रिएक्टर जो लिंगाकार में है, यह कोई यादृच्छिक संयोग नहीं है।

शक्ति युत शिव स्वयं माँ जो बने थे, इसका प्रमाण है शिव का मातृभूतेश्वर रूप। तमिलनाडु के तिरुच्चिरापल्लि में कावेरी नदी के उस पार एक श्रेष्ठी-युवती प्रसव-पीड़ा से तड़प उठी तो इस पार खड़ी उसकी माँ कावेरी में बाढ़ आने के कारण बेटी तक नहीं पहुँच पाई। क्या प्रसूति-वेला बाढ़ के लिए रुक सकती है? भक्ति न की पीर से शिव का मातृ-हृदय पसीज उठा। स्वयं शिव उस बिचारी की माँ का रूप धर कर पहुँचे। बेटी आश्वस्त हुई। कुशल दाई की तरह कोख से शिशु को निकाला नाल काटा और पथ्याहार एवं औषधि देकर बड़े प्रेम से सात दिन तक देखभाल की। सातवें दिन कावेरी में बाढ़ थमने पर असली माँ समय पर न पहुँचने की विवशता पर पछाड़ खाती पछताती आ पहुँची तो इधर अंदर बैठी माँ सहसा अंतर्ध्यान हो गई। ऐसी अपार करुणा और वात्सल्य दिखाने के लिए भगवान को मातृ-रूप में लाना भी अपने आप में एक कविता है। तिरुच्चि में शिवजी का नामधेय 'मातृभूतेश्वर' है।

तमिल काव्य में और जन-मानस में माँ का स्वरूप इस कदर दृढ़मूल है कि तमिलों के लिए तमिल स्वयं माँ है जिसे आदि शिव ने जन्म दिया था। भारती के शब्दों में - आदि शिवन की (पेट्र) प्रसूता तमिल कन्या है वह। तमिल-भूमि में पहले शिव से अधिक पराशक्ति की अधिक मान्यता

थी जिसे 'कोट्रवै' कहते थे। संघकाल की कविताओं से ज्ञान होता है कि इस भूभाग में मातृसत्तात्मक परंपरा की मान्यता थी जहाँ माँ के पास अधिकार होता है। मातृकुल स्वच्छंद-स्वतंत्र होगा ही। उसे प्रेम करने और वांछित पुरुष को पाने की स्वतंत्रता मिलती है। जहाँ नारी अपना मत रखने में निर्भीक होती है वहाँ उसकी संतान में भी वीरता के गुण प्रतिबिंबित होते हैं। चातुर्वर्ण्य के अंकुश से अनुशासित होने के पहले तमिल समाज में मातृकुल का उत्कर्ष देखने योग्य था। अधिकांश संघ-साहित्य इसका साक्ष्य देता है।

मध्ययुग में मातृकुल का अपकर्ष सर्वविदित है। मातृ-शक्ति का उत्थान युग की आवश्यकता थी। तमिल कविता में नवोत्थान की दुंदुभि बजाते हुए सुब्रह्मण्य भारती का प्रादुभवि हुआ। बचपन में ही निजमाता के प्रेम से वंचित भारती ने माँ पराशाक्ति में अपनी माँ को देखा-

> मातृस्वरूपिणी है- आदि पराशक्ति है यह
> वांछनीय है माँ की कृपा और अनुग्रह
> मिल जाए तो
> सिद्ध होगा जग में सब कुछ।

आगे चलकर बंगभूमि के बंकिम चंद्र का गीत 'वंदे मातरम्' की धुन बंगसागर होते हुए तमिल भूमि में पहुँची, तिलक की हुँकार 'स्वंतत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', सह्याद्रि और नीलगिरी के काननों से होते हुए तमिल भूमि में गूँज उठा तो भारती ने भारत माता के स्वरूप में माँ पराशक्ति को अध्यारोपित कर दिया। उनके लिए निज माता, माँ पराशक्ति और भारत माता में कोई भेद नहीं था। 'तीस करोड़ मुख वाली अठारह भाषाएँ बोलने वाली है भारत माता, किंतु उसका भाव एक है चिंतन एक है।'

मातृशक्ति की महानता की आराधना करने वाले भारती एक प्रस्ताव रखते हैं :-

> नारी के लिए जिस
> चरित्र का करते हो बखान
> समान हो वह मानदंड
> नर-नारी दोनों के लिए।

मातृकुल के अधिकार के पक्ष में क्या इससे सशक्त कोई स्वर हो सकता है?

माँ के प्रति भारती की प्रार्थना –

"माँ दे दो मुझे ऐसा अंत:करण/अंग-अंग चल जाए तो भी करता रहूँ/ माँ, तुम्हारा गुणगान।"

"माँ मुझमे इतनी शक्ति भर दो/ दो यह वरदान मुझे/पत्थर को हीरा बना दूँ/ तांबे को बना दूँ सोना/ तृण को धान्य बना दूँ/ सुअर के पिल्ले को बनाऊँ सिंह-शावक/ मिट्टी में भर दूँ गुड़ की मिठास/ हे मां ? इस भांति के चमत्कार दिखा दूँ देश में ।"

समकालीन तेलुगु कविता में 'माँ' का स्वरूप

डॉ. पी. माणिक्यांबा

विश्व साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं जिसमें 'माँ' विषय वस्तु न बनी हो। विशेष रूप से कविता के लिए यह मधुर वस्तु तो है ही। परंतु इस विषय संबंधी सारी कविताओं को संकलित करने की योजना निराली है। इस योजना के अंतर्गत तेलुगु में 'माँ' शीर्षक 118 कविताओं का संकलन 'अम्म' शीर्षक से 'रंजनी' तेलुगु साहिती समिति, ए. जी. आफिस, हैदराबाद द्वारा 1997 में प्रकाशित हुआ।

धरती को हम देशों में बाँटें तो भी धरती की मिट्टी, मिट्टी ही है। माँ कोई भी हो, वह वात्सल्य का छलकता-लहराता सागर ही होगी। मातृमूर्ति की भावना ही मधुर होगी। माँ हृदय की एक कोमल अनुभूति है और प्राण-चेतना है। माँ जीवन का सबसे बड़ा यथार्थ है। जो व्यक्ति भगवान को नहीं मानता वह भी माँ के चरणों में नतमस्तक हो जाता है क्योंकि माँ नहीं है तो जीव-मात्र का अस्तित्व नहीं है। जीवन है तो माँ निश्चित रूप से है। हर प्राणी 'माँ' के स्नेह एवं आत्मीयता से भावविभोर हो जाता है। आँखें क्या, शरीर का पोर-पोर भीग जाता है। तेलुगु साहित्य में कई कवियों ने माँ के स्नेह-ममता का, त्याग-बलिदान का, वात्सल्य-गरिमा का तथा माँ से जुड़ी स्मृतियों का भाव विह्वल चित्रण किया। माँ के स्मरण-मात्र से उसकी

भोली-भाली ममता का मार्मिक चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

''जाते-जाते माँ अपनी तस्वीर भी नहीं देती गई
तस्वीर खिंचवाती तो ना, देने के लिए
मैं कहता था–'माँ तस्वीर खिंचवाओ', तो
बसरा मोती-जैसा मुस्कुरा देती थी।
'तुम्हीं मेरी तस्वीर हो'–कहते हुए
मुझे अपने गले लगाती थी।'' –सी. नारायण रेड्डी

जन्म देने वाली माँ की, प्यार से पाल पोसकर बड़ा करनेवाली माँ की, तिल-तिल जलते हुए प्रकाश देनेवाली दीपक जैसी माँ की स्मृति ही दीपशिखा बन गई है। न बुझनेवाली वेदना का कश्मकश शुरू हो गया। कवि धिक्कारता है :–

''भ्रष्ट।
माँ का ऋण चुका नहीं सकता
जब तक तू माँ की माँ बनकर जन्म नहीं लेगा।'' –एन. गोपी

कुछ कविताओं में, माँ के प्रति समाज ने, परिवार ने एवं पति ने जो अन्याय-अत्याचार किया–कवियों ने बचपन में जो देखा–उसकी करुण-स्मृति प्रतिबिंबित हुई। इतना ही नहीं विप्लववादी, स्त्रीवादी, दलितवादी, मुस्लिमवादी आदि समकालीन कविता की प्रवृत्तियों में भी वात्सल्यमयी माँ की ही झाँकी मिलती है। इन सभी वैचारिक आंदोलनों से प्रभावित कवियों की 'माँ' शीर्षक कविताओं में भी उनकी वह प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है। विप्लववादी कवियों ने अपने आंदोलनों के दौरान, उनके घर से दूर जेल में या अज्ञात प्रदेशों में रहते समय उनके लिए निरंतर आँखों में रातें बितानेवाली स्नेहमयी माताओं का चित्रण किया, उनकी हालत पर चिंता की :–

''कल शाम का आँधी-तूफान, ओले बरसे ......
उस दृश्य को आँखों द्वारा हृदय पर ही रखना है।
वह स्थिति क्या होती है–माँ ही जानती है–मैं ही जानता हूँ,
कमरे में, पिंजरे में पंछी जैसा छटपटा रहा हूँ,
माँ का क्या होगा ?–सोचते खिड़की से बाहर देख ही रहा हूँ

मेरे नजदीक जो पेड़ है, बिना किसी बड़ी आवाज के
(भीतर के) जेल की दीवार पर औंधा झुक गया।'' –वरवर राव

आंदोलनों में अपने को समर्पित करने का साहस और हिम्मत देने के कारण 'माँ' के प्रति कवियों ने कृतज्ञता प्रकट की है–

''माँ ! तूने मुझे जन्म दिया
तेरे लिए विप्लव अभिवंदन हैं।
तूने साहस पिलाया है
पंछियों की रागिनियों के बीच
घास के फूलों के तल्प पर
माँ ! तूने मुझे जन्म दिया
तेरे लिए विप्लव अभिनंदन है !'' –शिव सागर

स्त्रीवादी चेतना से प्रभावित कविताओं में मातृत्व के वैभवमंडित रूप में युगों से नारी के प्रति अत्याचार को रेखांकित किया है। परिवार में अनेक परिभाषाओं में और अनेक पात्रों में पूरी तत्परता से सेवा करनेवाली नारी के पारिवारिक शोषण के प्रति सचेत किया है। हृदयस्पर्शी चित्रण वहाँ है जहाँ बताया गया है–जीवन भर रसोई घर में खाना बनाने की मशीन बनी माँ, एक दिन जंग लगी मशीन के समान बोझ बन जाती है, परिवार में बेटे-बेटियों में किस प्रकार महीनों के टाइम टेबल में बँट जाती है, किस प्रकार सारा परिवार उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा करता है।

दलित चेतना से स्फूर्त कविताओं में जाति एवं वर्ण-भेद के कारण माँ की स्थितियों में किस प्रकार भिन्नता आती है–रेखांकित किया है। दलित स्त्री किस प्रकार दुहरे शोषण का शिकार हो रही है–इसका हृदयस्पर्शी चित्रण 'माँ' के संदर्भ में भी हुआ है। स्वरूपरानी उच्च वर्ण की स्त्रियों पर भी प्रहार करती हैं। उनके अनुसार स्त्रीवादी उच्च वर्ण एवं उच्च वर्ग की स्त्रियों में भी दलित स्त्रियों की दशा समझने की क्षमता नहीं है। उनके अनुसार अनुभूति की उस गहराई तक वे नारी होकर भी नहीं पहुँच सकती हैं क्योंकि उनकी सामाजिक जीवन-शैली दूसरी है एवं उनकी चेतना सैद्धांतिक है। इसलिए कवयित्री अपनी माँ के प्रति भावुक होते हुए भी सचेत करती है कि

सड़ी-गली सामाजिक व्यवस्था जिसमें पितृ सत्ता एवं मनु द्वारा निर्धारित वर्ण-व्यवस्था है, उसके विरुद्ध स्वयं उन्हीं का संघर्ष के लिए तत्पर होना जरूरी है। भोली-भाली समाज के दुश्चक्र में फँसी माँ के प्रति ममता के साथ क़हती है :-

''माँ, तेरे स्पर्श के बिना
इस धरती पर हवा-रोशनी पुलकित नहीं होंगी।
पर,
ये तुझे समझ नहीं सकेंगी,
जब तक ये भी तेरे जैसी पिछड़ी जाति में जन्म नहीं लेंगी
छप्पर के नीचे बैठकर
यूँ दिन में सपने देखने से क्या फायदा ?
जाने दो, सफाई के काम की आदत तो है ही
अड़ोस-पड़ौस की औरतों को जमा करेंगी,
कोने में पड़ी हुई भंगी-झाड़ुओं को निकालेंगी,
जाति वर्ण की गंदगी से भरी
इस देश की गलियों की गंदगी को
बंगाल की खाड़ी तक साफ करेंगी।.......
उन सोने जैसे हाथों से
तुझे बाप का माल समझनेवाले
बुर्जुवा व्यवस्था रूपी पति को भी,
सर्फ में भिगोकर, ऊपर से नीचे तक खंगाल लेंगी।'' -स्वरूपा रानी

मुस्लिमवादी कविता में कवि अपनी माँ की वह तस्वीर उकेरता है जो धर्म के पिंजड़े में बंद सामाजिक एवं पारिवारिक शोषण की शिकार बनी साकार एवं सजीव मूर्ति है। समकालीन वे कविताएँ भी अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं जो मातृहीन व्यक्तियों द्वारा रची गईं। माँ के अभाव ने, वत्सल स्पर्श के अभाव ने एवं उस ममतामयी संस्पर्श के अभाव ने उनको अत्यधिक संवेदनशील एवं कल्पनाशील बना दिया -

''शिक्षा नहीं दी, फिर भी
गुरु दक्षिणा माँगी द्रोण ने,
माँ ने जीवन-दान दिया
मैंने उनकी मृत्यु का वर माँगा
ऐसा शाप ग्रस्त हूँ।
अब मुझे महीने भर शिशु बनकर
बाल भरत-जैसा, जो शेरों से
हाथियों से खेलता था,
मुझे भी माँ के वक्ष पर खेलने की
खेल-खेलकर थका-थका
वहीं सो जाने की इच्छा हो रही है।'' -शिखामणि

एक ही सूर्य संसार भर के लिए अनेक रूपों में प्रतीत होता है, उसी प्रकार मातृरूप के अनेक चित्र अनेक कविताओं में लक्षित होते हैं। भावुकता एवं आर्द्र भावना हर कविता में है। कहीं माँ प्रेरणा है, कहीं ममता एवं वात्सल्य की अंतर्वाहिनी के साथ विद्रोह की पुकार भी है एवं वेदना की चीत्कार भी है। कहीं संतान की सहानुभूति है, कहीं बेटी की समानानुभूति है। इस प्रकार समकालीन तेलुगु कविता में 'माँ' शीर्षक कविताओं में माँ के अनेक बिंब हैं, प्रतिबिंब हैं एवं समग्र साक्षात् रूप भी हैं। मात्र देवी नहीं, मानवी के रूप में भी मर्मस्पर्शी चित्रण इसकी विशेषता है।

स्वातंत्र्योत्तर नेपाली कविता में 'माँ' !

ओमनारायण गुप्त

भारतीय नेपाली साहित्य के विकास में दार्जिलिंग का नाम अग्रगण्य है। दार्जिलिंग के बाद ही भारत के अन्य जगहों जैसे असम सिक्किम, ब्रुवार्स व देहरादून आदि के नाम आते हैं। आजादी के बाद नेपाली भाषा को आगे बढ़ाने हेतु कार्य किया गया। बीच में गति कुछ मंद-सी हो गई। गद्य एवं पद्य दोनों में लेखकों का बहुत बड़ा योगदान पाया गया। इधर पद्य से अधि क गद्य लेखन पर साहित्यकारों ने जोर दिया है। सन् 1950 के समय

संविधान निर्माण होने के साथ लेखकों को स्वतंत्र रूप से ही लेखन परंपरा को आगे बढ़ाने का मौका मिला। नेपाली भाषा को उस समय भी संवैधानिक मान्यता नहीं मिली थी। फलस्वरूप लेखकों में अपनी जननी, जन्मभूमि व भाषा के प्रति स्वतंत्र विचार, शंकाएं व एक विशेष प्रकार की 'अस्तित्व रक्षा' आदि प्रश्नों के घेरे में लेखनी द्रुत गति से चलती रही। साहित्यकारों ने देश, समाज, भाषा व जाति को माध्यम बना, खुलकर कलम चलाई। साहित्य की हर विधा में लेखकों ने जहाँ कलम चलाई वहीं नारी कैसे स्वयं को अलग रख सकती थी, लेखिकाएँ भी सामने आईं, नारी अधिकारों एवं कर्तव्यों पर खुलकर रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। जननी, जन्मभूमि, माँ शब्दों को साहित्यकारों की लेखनी ने साकार कर दिया। सन् 1962 की चीन के साथ लड़ाई और सन् 1965 के भारत-पाक युद्ध ने सारे देश के साथ-साथ हर भाषा के साहित्यकारों को झकझोर कर जगा दिया। साहित्यकारों में जन चेतनावादी महाकवि अगम सिंह गिरी का प्रभाव जगतराई, नरबहादुर दाहाल, बुद्धकुमार मोक्तान, विकुम 'रूपासा', मन बहादुर गुरुंग के साथ-साथ सावित्री सुंदास, विनीता सिंह, गोपीनारायण प्रधान, हरि भक्त कटुवाल आदि ने खुलकर रचनाएँ कीं। नारीवादी चेतना की धारा ने साहित्य रचना में एक क्रांति ही ला दी। 'माँ' को भी साहित्यकारों ने विभिन्न रूपों में ढालकर उसकी गरिमा को बढ़ाना शुरू कर दिया।

कवि अगम सिंह गिरी ने अपनी कविता 'आमा को समझना' (माँ की याद) के माध्यम से एक पुत्र की अपनी असहाय, दुःखी माँ को असह्य छटपटाती हुई ही छोड़कर प्रवासी होने पर अंतःक्रंदन की जो अनुभूति हुई उसका वर्णन इस प्रकार क्षोभ, ग्लानि व कामना के शब्दों में करते हैं :-

"मैं इसी भूमि में तुमसे कोसों दूर रहकर अपने सीने में तुम्हारी याद को लिए मरूँगा। उस आँगन में प्रभामयी किरणें फूट जाएँ अर्थात् समृद्धि हो, इस प्रकार की कामना कर जीवन की अंतिम इच्छा मरने के पहले की है। माँ ! परंतु अब मैं तुम्हारी गोदी की कोमल उष्णता व स्नेह को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकूँगा।"

ममतामयी माँ अपनी संतान के प्रति किस प्रकार अपने कर्तव्य का

पालन करती है उसी की याद में कवि पारस मणि प्रधान :-

"हे माँ ! जन्म लेते ही मैंने माँ से कहा–दुःख में भी मरते-मरते माँ ही अनेक बार कहा, दूध मुँहाँ बालक था उस समय तुम्हारा मधुर दुग्ध-पान किया। दिन-रात मैंने न जाने कितने दुःख भी दिए फिर भी तुमने सुखपूर्वक ही हमें बढ़ाया, विद्या, बुद्धि बढ़ी, सुखी हो यह सोचकर सदैव मेरी सुध भी ली तुमने।"

साहित्य अकादमी द्वारा 'कर्ण कुंति' खंडकाव्य हेतु पुरस्कृत डॉ. तुलसी बहादुर छेत्री ने अपनी इस पुस्तक में कर्ण व कुंती के संघर्षमन, मनोस्थिति का; जो कुँवारी माता होने के फलस्वरूप स्थिति पैदा हुई; वर्णन एक अंश में किया है–मर्मस्पर्शी मातृ विह्वल चेतना को दर्शाने की चेष्टा की है :-

"कर्ण–हे माँ ! कैसी उलटी बुद्धि हो गई कि तुम्हारी अंदर की भावना आशीर्वाद को भी पाप समझ बैठी। वरदान को भी काला कलंक। माँ तुम क्यों ऐसे ही अनायास चिंतित हो गईं। यदि सच्चे अर्थों में कलंक है तो माँ! वह उलटे कर्मों द्वारा नहीं धोया जा सकता है।

इस पर कुंती अपने प्रायश्चित स्वरूप उससे कहती है कि वह प्रायश्चित करना चाहती है। अपने पूर्व किए कुकर्म को लेकर, वह कहती है कि वह उसे (कर्ण) पाँचों पांडवों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र के रूप में सम्मान देगी व अपने हृदय में स्थान देगी।"

आमा को समझ (माँ की याद में) शीर्षक कविता में विजय कुमार सुब्बा (पांडाम सिक्कीम) ने माँ की दयनीय दशा से पीड़ित दशा का चित्रण इस प्रकार से पुत्र के द्वारा करते दिखलाने की चेष्टा की है :-

"अपने नइहर जाऊंगी कहकर जाने वाली माँ कभी लौटकर नहीं आई।

भूमिहीन भूमि में पानी की धाराओं की तरह, बिना छतों वाली विश्राम स्थली को अनदेखी कर माँ चली गई। 'महिला समिति', 'नारी उत्थान मोर्चा' सब से थककर माँ चली गई।" आगे वे और लिखते हैं कि माँ वेदना में थी या वेदना ही उसमें थी कैसे कहूँ। आँसुओं में आँसू वह थी अथवा वही

आँसू थी कैसे कहूँ? कच्ची लकड़ियों को चूल्हे में आँसुओं से तर, जलाती हुई वह कभी भी नहीं अलग हुईं। परंतु फिर क्या हो गया जो वह गई तो पुनः लौटकर नहीं आई। नदी किनारे जहाँ पर बालु थी उसमें उसके कदमों की छाप को देखते हुए गया परंतु उसके लौटने की छाप नहीं है तो फिर न जाने माँ कहाँ चली गई। उस घुमावदार नीले दह तक माँ जो गई फिर कभी लौटकर नहीं आई।

कवियों ने माँ के चरित्र व रूपों का और भी विभिन्न रूपों में वर्णन करते हुए उसे वीरांगना के रूप में इस प्रकार दर्शाया है :–

'मांसले को रोजनामचा' कविता संग्रह में 'मेरी आमालाई भनि दिनू' शीर्षक कविता में कवि नवीन 'स्पंद' एक वीर योद्धा के महान विचारों को व्यक्त करते हुए अपनी महान वीर माँ के प्रति जिसका बेटा कारगिल युद्ध में काम आया है उसने अपनी माँ के यश को बढ़ाया है बदनाम नहीं किया है। कहते हैं :–

"बादलों के उस पार हर रोज माँ की ही बातें होती हैं, कह देना। इसी जन्म में माँ की सभी इच्छाएं पूरी होंगी, कह देना। ओ मंद शीतल पवन ! तुम्हारा पुत्र कहीं दूर राजदूत बनकर चला गया है, कह देना। उसने मात नहीं खाई है, वह मरा नहीं है, मेरी माँ से कह देना।"

'कुमारी खाती का कविता' कविता संग्रह में कवयित्री कुमारी खाती जी ने 'प्रतिभा को खोज' (प्रतिभा की खोज) कविता के माध्यम से स्पष्ट शब्दों में यह जताने की चेष्टा की है कि एक चरित्रवान नारी संतान उत्पत्ति की मशीन मात्र न होकर एक सशक्त शक्ति भंडार भी है। कवि विचंद्र प्रधान अपनी पुस्तक 'विपश्यना' में 'प्रिये' शीर्षक कविता में अपनी प्रेयसी, पत्नी को अपने जीवन को सुखमय बनाने में एक बैसाखी सदृश सहारा माना है। अनेक रूपों में साथ पाया है, अब उनकी यही कामना है कि वे एक अबोध शिशु के रूप में तुम्हारी गोदी में इच्छानुसार तन्मय होकर एक बार रो सके। अगले जन्मों में प्रिये मैं तुम्हें 'माँ' कह सकूँ। कवि असीत राई ने इस संघर्षमय जीवन में बेटे को संघर्ष करने से न रोककर उसे युद्ध हेतु भेजने

में अश्रु भी नहीं बहाने को कहा है। वे यह भी कहते हैं कि "संघर्ष ही बचता है, उसे आँधी के साथ खेलने देना, उसे कहीं भी हारने न देना। उसे जीतने देना। माँ, तुम मत रोना। उसकी जीत ही तुम्हारा पुत्रत्व है, वह कभी भी नहीं मरेगा।"

इसी प्रकार 'छाल' पत्रिका वर्ष 25 एक अंक 7 से 'आजकल मेरी आमा' (आजकल मेरी माँ) शीर्षक में युवा कवि निर्देश 'परिमल' कह रहे हैं :-

"आजकल मेरी माँ मुझे क्रांति की ऋचाओं को सुनाने लगी हैं। बच-बचकर या घुट-घुटकर मरना नहीं, मरकर भी बचने के मंत्रों को सिखाने लगी है।

कवि टीका भाई (गनगन ! ??) में 'आजको दशैमा छोरा लाई आशीष' शीर्षक में एक माँ द्वारा विजयादशमी के शुभ अवसर पर आशीर्वाद, आज की दयनीय दशा में, जहाँ सर्वत्र भ्रष्टाचार एवं आतंक का बोलबाला है ऐसी परिस्थिति में यही हो सकता है कि वह हत्यारा बने, भ्रष्ट असामाजिक तत्व बने, नटवर लाल, चार्ल्स सोवराज जैसा बनकर कुल का नाम रोशन करे। ..भ्रष्टाचारी टोपी को पहनकर तिहाड़ जेल में भी हिट हो, संविधान की खाली जगहों में, पुअल में फिट हो, ईमानदार पूर्वजों के संस्कार को मैंने स्वीकार किया वहीं इस पापी के इस नर्क में मैंने तुझे जन्मा है ...। इस प्रकार के आशीषों की आवश्यकता कवि ने व्यंग्य रूप में देकर 'लोहा को लोहा काटता है' इस बात की पुष्टि करानी चाही है।

इन सभी विचार भावनाओं में नेपाली भाषा में अब तक वीरता की पृष्ठभूमि में माँ को नि:स्वार्थ, ममतामयी, गरिमामयी व वीरांगनाओं के रूप में ही दर्शाया गया है। एक आदर्श माता से ही आदर्श समाज व देश की कल्पना की जा सकती है। हम इस अवसर पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत डॉ. लक्खी देवी सुंदास, श्रीमती खिरोदा खड़का, श्री आर. पी. लामा, श्री कर्णथामी व डी. बी. गुरुंग आदि महान विचारकों व साहित्यकारों को कभी भी नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं।

गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्र व कावेरी के छोर,
है नतमस्तक पावन हिमालय की ओर।
यही माँ है, जननी-जन्मभूमि भारती,
सुंदर-सुरम्य है, आओ उतारें आरती। (आर. पी. लामा)

मणिपुरी कविता में 'माँ'

डॉ. भगवतीप्रसाद निदारिया

आधुनिक मणिपुरी कविता मातृभूमि की दुर्दशा व मातृभूमि से अनन्य प्रेम की कविता है। मातृभूमि के साथ मातृभाषा की दयनीय अवस्था भी कवियों को सालती है। कवियों ने मातृभाषा की श्रीवृद्धि हेतु मानो आंदोलन का ही स्वरूप ले लिया। मातृभाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल न करने का दुःख उनकी कविताओं में बिखरा पड़ा है। मातृभाषा के साथ-साथ 'माँ' की दशा सुधारने, 'माँ' की परवशता को दूर करने, मातृभूमि को आजाद कराने और इस प्रकार भारत माता को खुशहाल देखने का स्वप्न मणिपुरी कविता में इंद्रधनुषी आभा के साथ अभिव्यक्त हुआ है। कुछ कवियों के भावोद्‌गार इस संबंध में उल्लेखनीय हैं।

आंदोगी मेमचौबी के अनुसार मातृभूमि की रक्षा हेतु, ''खड़े थे जो बाँहें फैलाए तेरे लिए/सारे वीर सपूत/गिर गए सब/खड़ा नहीं रहा कोई भी/रहेगी क्या सिर्फ यही/तेरी कथा माँ?'' वाली निराशा आशा में अवश्य बदलेगी। यही कथा नहीं रहेगी माँ की ! माँ का उद्‌धार अवश्य होगा।

आशाङबम मीनकेतन सिंह 'जय माँ मणिपुर' कविता में शीर्षक के अनुरूप मातृवंदनास्वरूप काव्य सृजन करना चाहते हैं। 'माँ' का पावन सम्मान ही सर्वोपरि है।

एलाङबम नीलकांत 'मणिपुर' कविता के माध्यम से मातृभूमि (धरा) की दुर्दशा बताते हुए उसके सम्मान के प्रति आह्वान करते हैं'', तुम्हें माँ मैतै लैमा !/ढूंढ़ लेंगे तुम्हें एक दिन तुम्हारे बच्चे/बहते आँसू के साथ।'' दुःखों का

अंत अवश्य होगा। भटके बच्चे सही राह आकर, कमजोर बच्चे, सहनशक्ति से और अहंकारग्रस्त बच्चे पश्चातापस्वरूप अपनी माँ के पास अवश्य लौटेंगे। उसे अवश्य सुख पहुँचाएंगे।

कमल सिंह लमाबम 'मातृ-तर्पण' कविता में अपने अश्रुओं से मातृभूमि के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए अपनी निर्धनतास्वरूप पीड़ित व दुःखी लोगों की सहायता न कर पाने की विवशता से त्रस्त है। 'चंद्रनदी' कविता में भी स्वदेश-प्रेम की स्वीकृति मिलती है।

नीलबाबू ओइनाम 'इंडिया का स्विट्जरलैंड' व 'दि ज्वैल ऑफ इंडिया' के रूप में प्रख्यात मणिपुर की अनुपस्थिति से व्यथित हैं। मणिपुर का प्राचीन, भव्य, सुखद वैभव और सौंदर्य कुटिल नीतियों के कारण दुःखद स्थितियों में पहुँच गया है। उसे उसका खोया सम्मान वापस दिलाना होगा।

प्रियब्रत एलाङ्बा 'प्रतीक्षारत माँ' ''अर्पित करें आओ पंच-प्राण/लहू में रंगी पोशाक बदल/आजादी की सिर्फ एक आवाज के लिए माँ की/अंधियारी रात में जीवन की/प्रतीक्षा कर रही है माँ हमारी/सुनहरे रंगवाली मशाल लिए।''

हिजम इरावत मातृभूमि-प्रेमी हैं। 'मेतै लैमा' कविता में मातृभूमि से पुत्रों को अनुभव प्राप्त करने के लिए वैश्विक प्रांगण में भेजने का अनुरोध किया गया है। विश्व प्रांगण में पहुँचकर पुत्रों को सभ्यता और विकास के आयामों की जानकारी मिलेगी। इसलिए माँ उन पुत्रों को अपने वात्सल्यमय छायांचल में ही न रखे। उन्हें प्रगति की दिशाओं में भेजे।

इस प्रकार मणिपुरी कविता की मातृभूमि वाली संकल्पना देश-प्रेम में विकसित होती हुई संपूर्ण विश्व की खुशहाली से जुड़ी है। 'माँ' के इस विशाल भाव-स्वरूप की कल्पना अपने आप में बहुत मनोरम है।

स्वातंत्र्योत्तर मराठी कविता में 'माँ'

डॉ. पद्‌मजा घोरपडे
डॉ. मीरा सुंदरराज

मराठी संत वाङ्‌मय में संतों ने ईश्वर-विट्‌ठल को माँ के रूप में देखा, संबोधित किया। हिरण, पक्षिणी आदि रूपकों द्‌वारा माँ का वात्सल्य, ममत्वभाव, स्नेह, बच्चों के प्रति चिंता, कौतुक, विस्मय व्यक्त होता रहा। माँ को व्यापक, वैश्विक रूप में देखने की भक्तिकाल से चली आई यह परंपरा स्वतंत्रता के बाद भी बरकरार रही, युगीन परिवेश, परिस्थितियाँ, मानसिकता के अनुरूप विविध रूप धारण करती रही लेकिन मूल भाव–उदासीकरण; वात्सल्य का सर्वव्यापक रूप–वही रहा। मराठी में 'माऊली'–माँ का पर्यायवाची शब्द–कोमलता, स्नेह, अपनत्व, सहनशक्ति की चरम सीमा, वात्सल्य, त्याग का चरमोत्कर्ष, कल्याणभाव व्यक्त करता है। मराठी में 'ईश्वर माऊली', 'गुरु माऊली', 'माय मराठी' (माय-माँ) आम प्रचलित संकल्पनाएँ हैं जो सदियों से जनमानस में रूढ़ हैं। मराठी मानस संत ज्ञानेश्वर को 'ज्ञानेश्वर माऊली', कहकर संबोधित करता है। सर्वव्यापी कल्याण, मंगल करनेवाली माँ मराठी जनमानस में घुट्‌टी की तरह समाई गई है। जनमानस में समाया माँ का पर्यायवाची और एक शब्द 'माय' भी व्यापक अर्थ धारण करता है। 'धरणी माय' (ज़मीन भाता) ज़मीन को 'माय' संबोधित करना; खेत को 'काली आई' (काली माँ) 'काल-काला रंग, आई-माँ में परवरिश करने का भाव, जीवनदान देने का भाव है। मराठी साहित्य में ये सभी शब्द माँ के उदास, व्यापक, वैश्विक रूप को व्यक्त करते हैं। संत जनाबाई 'विठु माझा लेकुरवाळा' संगे संतांचा भेळा' (मेरा विट्‌ठल बाल बच्चों वाला है।) कहती है। मराठी लोक साहित्य में 'माँ' विविध सामाजिक संदर्भ-परिवेशों के साथ आई हैं। स्वातंत्र्यपूर्व काल में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान मातृभूमि संकल्पना विविध पहलुओं से सशक्त रूप में कविता में साकार हुई। वि. दा. सावरकर का 'ने मजसी ने परत मातृभूमिला। सागरा प्राण तळमळाया' गीत सर्वश्रुत है। कवि कुंजबिहारी अपनी दीर्घ कविता में बार-बार कहते हैं 'भेटेन पुन्हा नऊ महिन्यांनी'। स्वतंत्रता संग्राम में शहीद होने जा रहा यह युवक

बार-बार माँ से कहता है-तुम्हारे कारण मैं इतना साहसी, वीर बना। अब मैं फाँसी चढ़ रहा हूँ लेकिन तुम चिंता मत करो। नौ महीनों के बाद मैं पुन: तुम्हारे घर आऊँगा--जन्म लूँगा, फिर तुम मुझे ऐसा ही वीर बनाओगी फिर मैं मातृभूमि--तुम्हारे ही व्यापक रूप-की रक्षा करके शहीद हो जाऊँगा।'

मराठी कविता में 'माँ' किसी एक बच्चे की माँ या किसी एक की माँ, किसी एक घर की माँ बहुत कम है, यह माँ सभी की माँ बनकर सामाजिक संदर्भों के साथ अवतरित हुई है। इसका एक कारण यह कि महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक, सावरकर, गोखले, न्यायमूर्ति रानडे आदि समाज सुधारक, चिंतक जो वैचारिक क्रांति, रेनेसाँ लाए उसका प्रत्यक्ष रूप व्यक्तिगत-निजी-संदर्भों की अपेक्षा कविता में सामाजिक संबंध-संदर्भ अधिक चित्रित हुए। गोविंदाग्रज (रामगणेश गडकरी) (1885-1919) की बहुचर्चित कविता 'राजहंस'-'हे कोण बोलले बोला। राजहंस माझा निजला', में अपने मृत बच्चे से लिपटी माँ, जो यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं कि उसका 'राजहंस' मर गया है-भी कविता के अंत में अपनी वात्सल्य भावना को सर्वव्यापी धरातल पर ले जाती है। माधव ज्युलियन (1894-1939) की 'प्रेमस्वरूप आई, वात्सल्य सिंधु आई' कविता माँ का असीम वात्सल्य भाव कलात्मकता से अंकित करती है। मराठी दलित कविता में 'माँ' संपूर्णत: सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, भावात्मक, शारीरिक शोषण के यथार्थ संदर्भों से घिरी है। दलित लेखकों के चरित्र में भी माँ मात्र परंपरागत वात्सल्यभाव तक सीमित नहीं है। कुल मिलाकर मराठी साहित्य, कविता में चित्रित माँ इन तमाम संघर्षों में डटकर अपने अस्तित्व की रक्षा करते हुए, बच्चे के प्रति सजगता से उत्तरदायित्व निभाते हुए अपने वात्सल्य का उदात्तीकरण करते हुए, मात्र परिवार की चार दीवारी में कैद व्यक्तित्व न बनते हुए संपूर्णत: सामाजिक संदर्भों-परिवेशों तक अपने को जोड़ती हुई दिखाई देती है। आरंभ में माँ को अति संवेदनशीलता से, व्यक्तिगत संदर्भ में चित्रित किया गया। (जैसे कवि यशवंत, कवि बी, कवि दत्त, भा.रा. तांबे आदि की कविताओं में) लेकिन शीघ्र ही माँ का यह अति भावना प्रधान रूप वैचारिक बनता गया। कवि कुसुमाग्रज-वि.वा. शिरवाडकर जी का एक लेख इस संदर्भ में प्रकाशित हुआ

था जो 'माँ' के इन परिवर्तित संदर्भों पर प्रकाश डालता है। 'काव्यातील आई गेली कुठे ? (काव्य से माँ गायब कहाँ हुई ?) में परंपरागत आधुनिक मराठी की कवयित्री बहिणा बाई 'माझी माय सरसोती' (सरस्वती) का उल्लेख अक्सर करती है।

कवि बोरकर (1910-1984), नारायण सुर्वे (1926 से), माधव ज्यूलियन (1894-1939), स्वातंत्र्यवीर वि. दा. सावरकर (1883-1966), बालकवी (1890-1918), ना. वा. टिळक (1861-1919) यशवंत (1899-1985), भा. रा. तांबे (1873-1941), गोविंदाग्रज (1885-1919), बहिणाबाई चौधरी (1880-1951) 'माँ' के चित्रण में मील के पत्थर माने जा सकते हैं। साने गुरुजी, अनुराधा पाटील, अनुराधा पोतदार, इंदिरा सेन, ग्रेस, रविचंद्र हडसनकर, पद्मा गोळे, संजीवनी मराठे, ना. धो. महानोर, फ. मु. शिंदे, नामदेव ढसाळ, सरिता पदकी, केशव मेश्राम, सुहासिनी इर्लेकर, रविकिरण झोळ, चंद्रकांत पाटिल, अरुणा ढेरे, परशुराम देशपांडे, विवेक राजापुरे, विजय चिंदरकर, बालम केतकर, शंकर रामाणी, उत्तम कोळगावकर, वामन निंबाळकर इंदिरा आठवले, सुशील पगारिया, सुषमा गरुड, लक्ष्मीकांत तांबोळी, अशोक जेधे, गणेश वसईकर, पुरुषोत्तम पाटील आदि अनेक कवियों ने 'माँ' पर कविताएँ लिखी हैं–लिख रहे हैं। अनेक विषयों में माँ को एक विषय के रूप में लगभग सभी कवियों ने अपनी कविता में स्थान दिया है। इन सभी कवियों ने अपने व्यक्तिगत सुख-दुःख, स्नेह, ममत्व आदि अनुभवों के साथ माँ के सजग सामाजिक व्यक्तित्व को अधिक रेखांकित किया है।

'माँ' काव्य की भूमिका

कुट्टिकृष्ण मारार
अनुवाद : डॉ. आरसु

(श्रीमती एन. बालामणि अम्मा मलयालम की यशस्वी कवयित्री हैं। मातृत्व भाव को कविता में विशिष्ट स्थान देकर उन्होंने मलयालम कविता को एक नया मोड़ प्रदान किया है। 'कुटुंबिनी', 'माँ', 'दादी' आदि उनके स्मरणीय काव्य हैं। बालपन के भाव-भावनाओं को स्वीकार करके लिखी कविताओं में स्नेह और दर्शन का मणिकांचन संयोग मिलता है। 'सोपानम' उनकी प्रतिनिधि कविताओं का प्रथम संकलन है। 'निवेद्यम' उनका दूसरा प्रतिनिधि काव्य संकलन है। 'बालामणि अम्मा की छप्पन कविताएं' और 'नैवेद्य' हिंदी में अनूदित हुए हैं।

माँ की अनुभूतियाँ और आत्मसुख 'माँ' शीर्षक काव्य की खूबी है। मलयालम के प्रवर काव्य समीक्षक कुट्टिकृष्ण मारार ने 'माँ' काव्य की भूमिका लिखी थी। उसका हिंदी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है।)

मानव जीवन की सुंदर, स्नेहपूर्ण और धर्मविचारोत्पादक गहराई का वर्णन इस प्रसन्न मधुर भावना विकास में मिलता है। अपनी एक विशेष चिंतनधारा और प्राप्य स्थान रखनेवाली ऐसी कृतियां निस्संदेह हमारी भाषा में सुलभ नहीं हैं।

गरिमामय मातृवात्सल्य का प्रभावशाली वर्णन करने का प्रयास कुछ कवियों ने किया तो है किंतु कवियों की विशाल सहानुभूति में उसको समेटना मुश्किल है। नवजात शिशु के रुदन को सुनते ही अतितीव्र प्रसव पीड़ा को माँ भूल जाती है। शिशु का पहला स्तन पान, पेट के बल पर लेटना, कदम रखना, तुतली आवाज में बोलना और उस अद्भुत आत्मा में एक-एक मानवीय चेष्टा को अंकुरित होते देखना। ये सब एक-एक महोत्सव हैं। एक-एक नवजीवन का आरंभ हैं। ऐसे आनंदपूर्ण क्षणों में वे पुलकित हो उठती हैं। नसों में तेज़ धड़कन होती है, हृदय में आनंद की लहरें उठती हैं, आत्मा में बिजली चमकती है। इनके वर्णन के लिए केवल भावना शक्ति सक्षम नहीं होगी।

संसार के आरंभ से लेकर माँ के हृदय में लबालब, कभी-कभार कुछ

रिश्तेदारों से अद्भुत कथा के रूप में कहती आई कुछ बातें हैं। इधर, एक एक आह्लाद उत्सव के रूप में. संस्कार विशुद्ध मातृहृदय से ऐसी बातें प्रवाहित हुई हैं। यह सरस्वती निष्पंद एक निर्मल तथा पावन नदी ही है। यह इतनी गहरी है कि हम इस में डूब सकते हैं। इसकी शीतलता से हम पुलकित हो उठते हैं।

गोद में लेटकर शिशु मुस्कुरा रहा है। यहाँ प्रेमी की भोग लालसा की अतिशयोक्ति नहीं है। माँ संसार को एक क्षीरसागर के रूप में देखती हैं। मन बहलाव के एक अप्रिय शब्द से शिशु का चेहरा अप्रसन्न दिखाई पड़े तो माँ को दुःख होगा। ऐसे प्रसंगों को पढ़कर हम अंजलिबद्ध हो जाएंगे। प्रथम संतान को पहली बार उठाते समय माँ की आत्मा पुलकित हो उठती है। वह शिशु जब माँ की गोद से उतरकर धरती पर प्रथम बार कदम रखता है तब माँ के अंतःकरण में एक अस्पष्ट वेदना भर जाती है। ऐसे मातृवात्सल्य के सामने समीक्षक एकदम स्तब्ध रहेंगे। मातृवात्सल्य उसकी पिघलती आत्मा है। वह संतानों की ओर बहती है। उसकी मीठी बूँदें एक-एक पंक्ति पर चिपककर चमक उठती हैं।

सर्वतोमधुर मातृवात्सल्य में अधिकार की एक अंधी चेतना निहित है। मनोवैज्ञानिकों की शिकायत है कि यह अंधा अधिकार बोध अक्सर बच्चों को गुमराह करता है। इन मनुष्यांकुरों को हमेशा उठाकर चलने पर बच्चे अपने आप चल न पाएंगे। उनमें जो चिनगारियाँ हैं माँ उनको मारकर बुझा देती है। उनके कोमल भावों को खराब कर देती हैं। किंतु इस माँ ने संतानों को ठीक तरह से समझ लिया है। 'कूप्पुकै' (अंजलि) इसका प्रमाण है।

''उन परिणाम सीढ़ियों को
पारकर एक-एक धीरे-धीरे
पहुँच गया मेरा मुन्ना
मानवता तक आखिर
पूरा करने को मेरा आनंद।'' (मातृचुंबन)

अपनी छाती पर पहने दिव्य रत्न का मूल्य यह माँ कभी भी भूल नहीं जाती हैं। संतानें सुकृत से प्राप्त निष्कलंक आत्माएं हैं। मैं उनकी सेवा के

लिए नियुक्त दासी हूँ। ऐसा मातृधर्म चिंतन उनमें प्रबल है। सदा आत्मशक्ति की आशंका के साथ ही वह माँ आगे बढ़ती है। मुन्ने को दूध देते समय माँ आशीष देती है :–

"मुन्ने न मिला दे
तुझमें अपूर्णता
माँ के दूध की दुर्बलता !"

मुन्ने को चलाना सिखाते समय माँ सोचती है –

"मैं हूँ कौन मुन्ने तुझे
कदम रखना सिखाने को
इस गहन संसार में !"

बच्चों के प्रति आदर होने के कारण यह कवयित्री दार्शनिक बन जाती है। बच्चों की किसी भी बात या भाव को वे बचकानी नहीं मानतीं। उन बातों के ज़रिए वे विश्व की गति की ओर ताकती हैं। जीवन की गहनता की ओर चली जाती हैं। वहाँ से हमारे विचारों को उज्ज्वल बनानेवाली पंक्तियों की एक गठरी लेकर वे वापस आएंगी। कभी खाली हाथ लौट आती हैं तो भी उनके श्रांत मधुर भाव से हमारी उत्सुक आँखें संतोष और आह्लाद से विकसित हो जाती हैं।

"रहा था मेरा मुन्ना सस्मित
माँ कुछ नहीं जानती।"

इस प्रकार का तत्वज्ञान मिलते समय भी हम कृतार्थ नहीं बनते। विश्व का चमत्कार अज्ञेयता के अद्भुत पर निर्भर है।

सच्चाई यह है कि बच्चों पर बल देकर जीवन दर्शन की खोज में बालामणि अम्मा लगी हुई हैं। इस पथ पर वे काफी आगे बढ़ी हैं। केवल समाज के प्रति स्त्रियों की दुर्वह जिम्मेदारी के रूप में वे मातृत्व को नहीं मानती हैं। उनके अनुसार एक आनंदपूर्ण अद्भुत सिद्धि के रूप में विवाह जीवन में ऊँचा स्थान रखता है। इसलिए विवाह उनकी दृष्टि में मात्र रिश्ता तय होने की बात है। वर-वधुओं का परमऐक्य तो एक शिशु के जन्म के

साथ ही संपन्न होता है। वही असली विवाह समारोह है। एक कुशल प्रयोग के ज़रिए कवयित्री उसे हमारा अनुभव बना देती है। बच्चों के छेड़छाड़ को वे काम्यलाभ मानती हैं। अंत में इस कर्मयोगिनी को अपने पुत्र में ईश्वर दर्शन का अनुभव भी प्राप्त हो गया है।

लगभग एक दशक के पहले कवि नालाप्पाट्टु नारायण, मेनोन की 'आज की माँ' शीर्षक सुंदर काव्यकृति मैंने उन्हें पढ़ाई थी। उसको कंठस्थ करते समय तब से वास्तविक दुनिया में उस प्रकार की एक माँ को देखने की कामना मेरे मन में पैदा हो गई थी। ऐसी कामना कई पाठकों में भी पैदा हुई होगी। कवियों को अगली पीढ़ी के स्रष्टा कहने में कोई गलती नहीं होगी। भावनास्रष्ट उस माँ से भी एक कदम आगे आनेवाली एक माँ को अब हम देख सकते हैं। उसकी उज्ज्वलता और भी बढ़ गई है। ऐसी एक आदर्श जननी हमारे सामने प्रत्यक्ष हो गई हैं।

यह माँ बहुत उदार भाव से अगली पीढ़ी का लालन-पालन करती हैं। ऐसी स्थिति में मलयालम साहित्य के समान इस पीढ़ी की भी उन्नति की कामना कर सकते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर सिंधी साहित्य में 'माँ'

जी. वी. मुर्जानी
हिंदी प्रस्तुति : डॉ. किशोर वासवानी

माँ की महिमा शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती। यह अद्भुत है। माँ संसार के सभी सुखों की खान है। इसमें माता के प्यार के अमूल्य हीरे-मोती छुपे हैं। माँ का आशीर्वाद और स्नेह से भरा उनका स्पर्श जीवन की अमूल्य निधि है। जीवन-दायिनी माँ जीवन का प्रथम और सच्चा गुरु है। ममता से होकर ही स्वर्ग के सुखों का द्वार खुलता है।

जिस प्रकार विश्व की विभिन्न भाषाओं में माँ पर काफी साहित्य रचा गया है, उसी प्रकार सिंधी भाषा में भी कई कवियों एवं लेखकों ने माँ की महिमा बखानी है। स्वतंत्रता के पश्चात् लिखे गए सिंधी साहित्य में माँ विषय

पर काफी खजाना मिलता है। उन सबके बारे में लिखना कठिन है। फिर भी उनमें से कुछ निम्नांकित रचनाओं का जिक्र किया जा सकता है।

सिंधी के वरिष्ठ रचनाकार गोवर्धन भारती की पुस्तक 'लातियुँ' (मधुर आवाजें, चहचहाटें) (1958) में 'ओ माता' नामक रचना ने विशेष ध्यान आकर्षित किया।

एक अन्य रचनाकार भगवान 'निरदोष' की पुस्तक 'रंग-बिरंगी फूकणां' (रंग-बिरंगी-गुब्बारे) (1981) में प्रकाशित 'माता की महिमा' एक सशक्त रचना है।

सिंधी के वरिष्ठ कवि हरि दिलगीर द्‌वारा रचित 'गीत गुलाबी' (1987) में संग्रहीत रचनाओं में माँ को लेकर प्रभावशाली रचनाएँ हैं।

सिंधी ग़ज़लकार टिकम आफताब की रचना 'बड़ी अम्मा' (1991) का मूल विषय ही माता की ममता पर आधारित है।

इसी प्रकार गोपी मोटवानी, नारायण हिंगोराणी की रचनाओं एवं डॉ. हूंदराज बलवाणी (1997) के संपादकत्व में प्रकाशित बालगीत और बाल कहानियों में तथा सुभाष शर्मा द्‌वारा रचित एक पुस्तक (मुखंदड़-मिखड़ियूं) (2000) में 'माता भाग्य विधाता' नामक रचना में माता की महिमा का बखान है।

विभाजन के पश्चात् सिंधी गद्‌य रचनाओं में भी माँ विषय को लेकर काफी सशक्त रचनाएँ मिलती हैं।

सिंधी भाषा के सशक्त एवं चर्चित रचनाकार मोहन कल्पना का उपन्यास 'माऊ' (माँ/1979) में कथानक का तानाबाना माँ (भाव) के आसपास बुना हुआ है। इसमें एक माँ भूखे रहना पसंद करती है परंतु अपने बेरोजगार बेटे के हाथ से कलम छीनना पसंद नहीं करती। रचना-कर्म के प्रति गहन निष्ठा को यह रचना प्रस्तुत करती है।

नेहरू जी की प्रसिद्‌ध कृति पिता के पत्र पुत्री के नाम की तर्ज पर ही 'माँ के ख़त बेटे के नाम' (माऊ जा पुट्‌ डांह ख़त-1988) रचना में लेखिका रुकमणी चैनाणी ने माता के प्यार, उसकी नसीहतें, जीवन दर्शन, मानवता,

मेहनत, नम्रता, स्वनिर्भरता आदि की विचारधारा को लेकर काफी उपयोगी एवं चिंतनयुक्त सामग्री दी है।

कहानी संग्रह 'ममता', गोपाल भारवाणी (1989) में, माँ विषय को लेकर उसके विविध पक्षों पर विचार विमर्श किया गया है।

गोरधन मूरजानी ने अपने निबंध माता (1994) में माँ द्वारा बेटे की उन्नति के लिए उठाई गई तकलीफों का जिक्र किया है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि माँ एक शाश्वत विषय और भाव है। जब से सृष्टि का जन्म हुआ तब से माँ की ममता का जन्म हुआ। सृष्टि का दूसरा नाम ही 'माँ' है। सिंधी भाषा रचनाएँ इससे अछूती नहीं हैं। 'माँ' जन्मभूमि का पर्याय भी है। विभाजन का दर्द जितना सिंधी भाषियों ने भोगा है। उतना शायद किसी कौम ने नहीं। अतः 'माँ' का रूपक कई आयामों में सिंधी रचनाकारों में समाया हुआ है।

विद्रोही : समाज की धड़कन

चरनजीत सिंह

किसी संगठन द्वारा अपने निहित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी देश विशेष की सरकार के विरुद्ध अपनाई जाने वाली संगठित हिंसात्मक प्रक्रियाओं को आतंकवाद का नाम दिया जा सकता है। ऐसे संगठन से जुड़े वे व्यक्ति आतंकवादी कहलाते हैं। इन आतंकवादियों में कुछ तो वे व्यक्ति होते हैं जो सभी कुछ जानते हुए इन हिंसात्मक गतिविधियों में संलिप्त होते हैं एवं कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिन्हें धर्म, जाति आदि के नाम पर बरगलाकर आतंकवादी संगठनों में शामिल कर लिया जाता है। इनके अलावा एक अन्य श्रेणी ऐसे व्यक्तियों (आतंकवादियों) की भी होती है जो परिस्थितियों के कारण हिंसा के मार्ग पर चल निकलते हैं। इस प्रकार के आतंकवादियों के जन्म के लिए अपेक्षित परिस्थितियों के निर्माण में, कुछ हद तक, व्यवस्था तंत्र का हाथ भी रहता है। एक बार जो व्यक्ति इन संगठनों का सदस्य बन जाता है, फिर वह चाहकर भी इनके जाल से नहीं निकल पाता। उसकी अंतिम परिणति मृत्यु ही होती है, चाहे वह सरकारी गोली से हो अथवा उसके अपने संगठन के किसी अपने ही साथी की गोली से हो।

जी. जे. 'हरिजीत' के नाटक 'विद्रोही' में दो पीढ़ियों के संयोग से सत्य और असत्य को दिखलाने का प्रयास किया गया है। नाटक का प्रारंभ सन् 1942 से किया गया है जब भारत पर अंग्रेजी शासन कायम था। मणिसिंह एक देश प्रेमी व्यक्ति है जिस पर अनेक मणिपुरियों की हत्या का इल्जाम है और जिसे अंग्रेजी हुकूमत फाँसी पर चढ़ाना चाहती है। वह नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज के एक सिपाही अर्जुनसिंह को अंग्रेजी पल्टनों की स्थिति के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी हासिल करवाता है। इसी अर्जुनसिंह और सुचित्रा की संतान बाबूसिंह है जिसे लगभग चालीस वर्ष बाद की परिस्थितियों में विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है। वह देशभक्त कहलाने में विश्वास नहीं करता अपितु स्वयं को देशभक्ति कहता है। वह एक ऐसा 'विद्रोही' है जो मणिपुर का एक पृथक वजूद बनाना

विद्रोही (नाटक) / जी. जे. हरिजीत / सार्थक प्रकाशन, 100ए, गौतम नगर, नई दिल्ली-110049 / 80 रुपए

चाहता है। इस प्रयोजन से चीनी अलगाववादी शक्तियों के बहकावे में आकर वह चीन में जाकर प्रशिक्षण भी लेकर आता है और साथ में लाता है मणिपुर के संदर्भ में चीनी दृष्टिकोण में रंगी विचारधारा। वह एक ऐसा पथ भ्रष्ट पात्र है जो षड्यंत्र रचकर चोवासिंह को लोकेंद्र की हत्या के अपराध में पकड़वा देता है और बाद में स्वयं उसकी हत्या भी कर देता है। नाटक में मुख्य पात्र अर्जुनसिंह और बाबूसिंह ही हैं। पड़ोसी देशों की शह पर भारत में विघटनकारी शक्तियाँ किस कदर अपने पाँव जमाती जा रही हैं, उनका स्पष्ट संकेत 'विद्रोही' में देखने को मिलता है। इसमें मानवता को नस्ल के आधार पर बाँटकर किसी एक पूरी नस्ल को अपराधी करार देने की इन्सानी मनोवृत्ति पर करारा प्रहार किया गया है। यह मनोवृत्ति, आज, भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में अपने पाँव जमा चुकी है। इस नाटक का एक प्रखर पहलू उन विद्रोहियों द्वारा सरकारी तंत्र के उत्पीड़न को झेलना भी है जो अपने हथियार छोड़कर देश की मुख्य धारा से जुड़ चुके हैं। चोबासिंह को इस यातना को झेलना पड़ता है। 'विद्रोही' में अजहस पूरा न करने पर मिलने वाली कड़ी सजा का उल्लेख भी देखने को मिलता है जो यह दर्शाता है कि विद्रोहियों के आका किस कदर दुर्दांत होते हैं। नाटक के अंतिम दृश्य में ललांबा द्वारा किए गए आक्रमण में अर्जुनसिंह और बाबूसिंह को बचाकर लेखक ने मानव मूल्यों को भी जीवित रखा है।

'विद्रोही' का नाटककार विभिन्न पात्रों के माध्यम से पाठक के मन को झकझोरने में पूर्णतः सफल रहा है। उसने इस नाटक को रंगमंच की दृष्टि से भी सफल बनाने का पूरा प्रयास किया है। 'विद्रोही' में हरिजीत ने भाषा शैली का विशेष ध्यान रखा है। 'थकत चरी' (धन्यवाद के लिए प्रयुक्त) जैसे ठेठ मणिपुरी शब्दों के प्रयोग से यह नाटक और अधिक जीवंत बन पड़ा है। संवादों में गति होने के कारण वे कहीं भी बोझिल प्रतीत नहीं होते। 'विद्रोही' में समाज की धड़कन सुनाई देती है, मानवता का दुःख-दर्द दिखाई देता है एवं वर्तमान की वास्तविकता तथा एक नए भविष्य का संकेत देखने को मिलता है।

सैक्टर-4/1215, आर.के. पुरम,
नई दिल्ली-110 022

साभार प्राप्ति-स्वीकार

❑ हिंदी कवयित्रियों की हाइकु-काव्य साधना/डॉ. भगवतशरण अग्रवाल/हाइकु-भारती प्रकाशन, 396, सरस्वतीनगर, अहमदाबाद-380015/2002.

❑ मैं बेचता हूँ दर्द (कविता संग्रह)/अनुपम कुमार/पूब गोशाला, जयानगर, मालिगाँव, गुवाहाटी-11/2001.

❑ तस्वीरें (कविता संग्रह)/इंदिरा 'शबनम'/9/ब 'मयूरबन' अपार्टमेंट, 1100, शिवाजी नगर, मॉडेल कॉलोनी, पुणे-411016/2002.

❑ कभी-कभी (कविता संग्रह)/रचनाकार एवं अनुवादिका : रश्मि रमानी/रामकृष्ण प्रकाशन, सावित्री सदन, तिलक चौक, विदिशा, (म.प्र.) 464001/2002.

❑ करो राष्ट्र निर्माण (दोहा सतसई)/ए.बी. सिंह/रेखा प्रकाशन, ए-1, कैलाश नगर, निंबाहेड़ा, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)/312617/2001.

❑ विद्यापति के काव्य में श्रृंगार, भक्ति और समाज-दर्शन/डॉ. पद्मा पाटील/गंधबहार प्रकाशन, 868/6-9, कलंबा, रिंग रोड, कोल्हापुर-416012/1999.

❑ साहित्य चिंतन/डॉ. भगवतशरण अग्रवाल/साहित्य भारती, 396, सरस्वती नगर, अहमदाबाद-380015/2002.

❑ संवाद और हस्तक्षेप/संपादक : विजयकुमार देव/पं. रविशंकर शुक्ल हिंदी भवन न्यास प्रकाशन, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल-462003/2002.

❑ तो अब चिंता क्या है (कविता संग्रह)/अक्षय गोजा/सुरेंद्र कुमार एंड सन्ज़, 30/21ए-22ए, गली नं. 9, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110 032/2002.

❑ मानव अधिकार आंदोलन के महान भारतीय योद्धा/डॉ. पी. सी. रे., डॉ. जुगल किशोर (अंग्रेजी से अनुवाद : डॉ. भगवतीप्रसाद निदारिया)/पवन प्रकाशन, ई-98, भागीरथी विहार, गोकुलपुरी, दिल्ली-110 094/2002.

❑ जीवन के खोल (कहानी संग्रह)/बैनीकृष्ण शर्मा/अंजुरि प्रकाशन, आर. 1/17, नवादा हाउसिंग कॉम्प्लेक्स, नज़फगढ़ रोड, नई दिल्ली-110059/2002.

❑ अनहद (ग़ज़ल-संग्रह)/आचार्य सारथी/आशीष प्रकाशन, 1/5786, बलवीर नगर चौक, शाहदरा, दिल्ली-110 032/2002.

❑ जीवन मोक्ष (मूल तमिल से तिरुक्कुरल का हिंदी भावानुवाद) प्रधान संपादक : डॉ. ना. महालिंगम्/लेखक-अनुवादक : डॉ. रवींद्र कुमार सेठ/सहयोगी

अनुवादक : डॉ. एच. सुब्रहमण्यम्/साहित्य शोध संस्थान, 8ए/141, पश्चिमी विस्तार क्षेत्र, करोल बाग, नई दिल्ली-110 005/1999.

❑ मुक्ति (कविता संग्रह)/संपादक : मनोज कुमार कैन/हिंदी पत्रकारिता एवं भाषा विकास संस्थान, 23, मोतीबाग गाँव, नई दिल्ली-110 021/2002.

❑ जिद्दी लोग (नाटक)/योसेफ-बार-योसेफ/अनुवाद : डॉ. सी. एल. प्रभात/सन्मति प्रकाशन, नरेंद्र सदन, 4 माला, मुगभाट क्रास लेन, मुंबई-400004/2002.

❑ एक छोटी सी बात (कहानी संग्रह)/धनंजय कुमार सिंह/समकालीन प्रकाशन, 2762, राजगुरु मार्ग, नई दिल्ली/2002.

❑ ठूँठ की आशीष (कविता संग्रह)/गुलाब चंद कोटड़िया/गुलाब प्रकाशन, 469 (नया नं. 82) मिंट स्ट्रीट, चेन्नै-600079/2002.

❑ अकथ (कहानी संग्रह)/डॉ. श्याम सखा 'श्याम'/प्रयास ट्रस्ट, 12, विकास नगर, रोहतक-124001/2000.

❑ घुमक्कड़ की डायरी/बाबूलाल दोषी/साहित्य केंद्र प्रकाशन/डी-432, गली नं. 9, भजनपुरा, दिल्ली-110053/2002.

❑ ज़िंदगी की आँच और रंग (ललित शुक्ल के जीवन और साहित्य पर केंद्रित)/संपादक : डॉ. गुरचरण सिंह/मंजूषा प्रकाशन, ए-18, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059/2002.

❑ नकेल (हाइकु संग्रह)/सदाशिव कौतुक/साहित्य संगम, 'श्रमफल', 1520, सुदामा नगर, इंदौर-9/2002.

❑ सौंदर्य और रचनाशीलता/डॉ. इंद्र बहादुर सिंह/अनंग प्रकाशन, बी-202, उत्तरी घोंडा, दिल्ली-110053/2002.

❑ भारतीय दलित साहित्य : एक परिचय/डॉ. तेजस्विनी कट्टीमनी वल्मीक पब्लिशर्स, डी-2ए/76ए, जनकपुरी, नई दिल्ली-58/2002.

❑ उद्वेलित आवेग (कविता संग्रह)/इंदिरा अग्रवाल/कश्ती प्रकाशन, जयगंज, अलीगढ़-202001/2002.

❑ अल्लमप्रभु के वचन (कन्नड से अनुवाद : डॉ. तिप्पेस्वामी/बसव समिति, 'बसव भवन', श्री बसवेश्वर सर्कल, बेंगलूर-560001/2002.

❑ (1) भारतीय साहित्येतिहास में महिला रचनाकारों का योगदान (2) हिंदी साहित्येतिहास और शोध ग्रंथ (3) हिंदी साहित्येतिहास : कुछ संदर्भ/डॉ. सरोजनी पांडेय/ग्रंथम, मेस्टन रोड, कानपुर-208001/2002.

युग स्पंदन
(जनवरी-सितंबर, 2002)

जिसमें भारतीय रचनाकारों की माँ विषयक लगभग 100 कविताओं का अनुपम संकलन है।

रचनाकार : अली सरदार जाफ़री, आंदोगी मेमचौबी, आचार्य सारथी, आर. पी. लामा, आशा राजु, उमाशंकर जोशी, एंडलूरि सुधाकर, ए. जी. रतनाकाळेगौडा, एन. के. देशम, कँवलजीत भुल्लर, कर्ण थामी, कमल, कविदासन, कविता वाचक्नवी, काकली चौधुरी, किशोर पाहूजा 'जीवन', कुंजरानी लोङ्जम चनु, कुमारी खाती, के. एस. निसार अहमद, के. सच्चिदानंदन, खिरोदा खड़का, गीता, ग्रेस, चंद्रकांत देवताले, जगदीश गुप्त, जय गोस्वामी, जेँस फर्नांदीश, जी. एस. शिवरुद्रप्पा, ज़ोया ज़ैदी, ज्ञानकूत्तन, डी. राधाकृष्ण पिल्लइ, देवारति मित्र, नवकांत बरूआ, नागेश करमली, ना. बालामणि अम्मा, नामदेव ढसाळ, नारायण सुर्वे, निदा फ़ाज़ली, परिमल मुत्तु, पी. रामन, पुतली कायस्त, प्यारे हताश, प्रकाश पाडगांवकार, प्रद्युम्नदास वैष्णव, प्रियब्रत एलाङ्बा, बलदेव वंशी, ब्रजनाथ बेताब, बिल्कीस जफ़ीरुल हसन, भाग्य जयसुदर्शन, भानुजी राव, भा. रा. तांबे, मद्दूरी नागेशबाबू, मधुचंदा सइकीया, मधुप पांडेय, मलका नसीम, मीरा ठाकुर, रघुनाथ दास, रफ़िया शब्नम आबदी, रमाकांत रथ, रविंद्र, रश्मि रमानी, राजेंद्र शाह, राधाकृष्ण शिरफोड, रामकुमार कृषक, रामदरश मिश्र, रावुळपल्लि सुनीता, रीना शर्मा, लक्खीदेवी सुंदास, ललित शुक्ल, विजयाबाय सरमळकार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वीथि चट्टोपाध्याय, वैरमुत्तु, शरतचंद्र प्रधान, शुभदर्शन, शोभा जोशी, श्याम निर्मम, श्रीकांत जोशी, संतोष बंसल, संतोष सिंह 'धीर', संतोषसिंह शहरयार, सनत ताँती, सादिक, सी. नारायण रेड्डी, सुंदरम, सुगतकुमारी, सुधेश, सुबोध सरकार, सुभाष शर्मा सुजाग्र, स्नेहमयी चौधरी, हरदयाल, हृषिकेश मल्लिक व अन्य।

अनुवादक : डॉ. अंजुमन आरा, अर्चना कामत, डॉ. अजयकुमार पटनायक, डॉ. अरविंदाक्षन, डॉ. इंदरराज बैद, डॉ. इबोहल सिंह काङ्जम, ओम नारायण गुप्त, डॉ. एन. श्री नाथ, डॉ. एम. के. प्रीता, डॉ. एम. रंगय्या, एम. विजय लक्ष्मी, डॉ. एम. शेषन, कर्णथामी, कनुप्रिया प्रशांत गायक, कमलाकर दत्ताराम म्हाळशी, डॉ. किशोर वासवानी, के. आर. कृष्णा राव, प्रो. गोरक्ष थोरात, डॉ. चंद्रलेखा, जयंती नायक, डी. राधाकृष्ण पिल्लइ, नम्रता कुमारी, डॉ. पद्मजा घोरपडे, डॉ. पद्मा पाटील, डॉ. पी.के. राधामणि, डॉ. पी. माणिक्यांबा 'मणि', बलवंत सिंह आँसू, बी. एन. ठाकुर, ब्रजनाथ बेताब, डॉ. ब्रजसुंदर पाढ़ी, डॉ. मंजु मोदी, डॉ. महाराज कृष्ण भरत, डॉ. महावीर सिंह चौहान, डॉ. महेंद्रनाथ दुबे, डॉ. मीनाक्षी काला, डॉ. मीरा सुंदर राज, मैना थापा आशा, रविकांत नीरज, रश्मि रमानी, डॉ. विजयराघव रेड्डी, डॉ. वी. कृष्ण, डॉ. शाहीना तबस्सुम, डॉ. शुभदर्शन, संध्या, संतोष सिंह शहरयार, संतोष अग्रवाल 'कल्पतरु', संतोष अलेक्स, संतोष सिंह 'धीर', सत्यानंद पाठक, डॉ. सना/बी. सत्यनारायण, सिद्धनाथ प्रसाद, सुरेंद्र दोशी, सुरेखा पाणंदीकर, हरीश कुमार अग्रवाल।

रचना-चयन एवं संकलन

श्रीमती मैना थापा आशा (असमिया), डॉ. अजय कुमार पटनायक (उड़िया), डॉ. शाहीना तबस्सुम (उर्दू), डॉ. स्नेहलता शरेशचंद्र (कन्नड), डॉ. महाराज कृष्ण भरत (कश्मीरी), डॉ. चंद्रलेखा एवं श्रीमती मनुजा जोशी (कोंकणी); डॉ. महावीर सिंह चौहान (गुजराती), डॉ. इंदरराज बैद (तमिल), डॉ. पी. मणिक्यांबा (तेलुगु), श्री ओम नारायण गुप्त (नेपाली) डॉ. शुभदर्शन (पंजाबी), डॉ. महेंद्रनाथ दुबे (बंगला), डॉ. देवराज (मणिपुरी), डॉ. पद्मजा घोरपडे (मराठी), डॉ. आरसु (मलयालम), डॉ. किशोर वासवानी (सिंधी)।

❑ पृष्ठ : 112 ❑ सहयोग राशि : 60 रुपए ❑

'युग स्पंदन' कार्यालय, 10841/44, मानकपुरा, करोल बाग, नई दिल्ली-110005 से श्री कन्हैयालाल द्वारा प्रकाशित व तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित ❑ अवैतनिक संपादक ... निदारिया